लागत मूल्यपर हिन्दी पुस्तकें प्रकाशित करनेवाली

एक मात्र सार्वजनिक संस्था

सस्ता-साहित्य-प्रकाशक मंडल, अजमेर

उद्देश्य—हिन्दी साहित्यमें उच्च और शुद्ध साहित्यके प्रचारके उद्देश्यसे इस मण्डलका जन्म हुआ है। विविध विषयोंपर सर्वसाधारण और शिक्षित समुदाय, स्त्री और बालक सबके लिए उपयोगी और सस्ती पुस्तकें इससे प्रकाशित होंगी।

इस मण्डलके सदुद्देश्य—महत्व और भविष्यका अन्दाज पाठकोंको होनेके लिएँ हम सिर्फ उसके संस्थापकोंके नाम दे देते हैं—

मंडलके संस्थापक—(१) सेठ जमनालालजी बजाज वर्धा, (२) सेठ घनश्यामदासजी बिडला कलकत्ता (सभापति) (३) स्वामी आनन्दजी (४) बाबू महावीरप्रसादजी पोद्दार (५) डा० अम्बालालजी दधीच (६) पं० हरिभाऊ उपाध्याय (७) बा० जीतमल लूणिया अजमेर (मन्त्री)

पुस्तकों का मूल्य—(१) प्रथम श्रेणीके स्थाई ग्राहकोंके लिये लगभग लागत मात्र रहेगा अर्थात् उन्हें लगभग १६०० पृष्ठोंकी पुस्तकें ४) में मिलेंगी। इस तरह उन्हें १) में ५०० से ६०० पृष्ठों तककी पुस्तकें मिलेंगी। अर्थात् पुस्तकपर छपे मूल्यसे पौनी कीमतसे भी कुछ कममें उन्हें मिलेंगी। (२) द्वितीय श्रेणीके स्थाई ग्राहकोंसे पुस्तकोंपर छपे मूल्यपर (सर्वसाधारणके लिये) तीन आना रुपिया कमीशन कम करके मूल्य लिया जायगा अर्थात् उन्हें १) में लगभग साढ़े चार सौ पृष्ठोंकी पुस्तकें मिलेंगी (३) सर्वसाधारणको १) में लगभग चारसौ पृष्ठोंकी पुस्तकें मिलेंगी। सचित्र पुस्तकोंका कुछ मूल्य अधिक रहेगा।

हमारे यहांसे प्रकाशित होनेवाली दो मालाएँ

हमारे यहासे सस्ती साहित्य माला और सस्ती प्रकीर्णक पुस्तक माला ये दो मालाएँ निकलती हैं। वर्ष भरमें प्रत्येक मालासे लगभग सात आठ पुस्तकें (कम या ज्यादा) निकलती हैं और इन सब पुस्तकोंकी पृष्ठ-संख्या मिलाकर लगभग १६०० पृष्ठोंकी होती है।

वर्ष १]　　सस्ती विविध पुस्तकमाला　　[पुस्तक ६
सस्ती प्रकीर्णक पुस्तकमाला

तरंगित हृदय

अथवा

विचार तरंगमाला

लेखक—

श्रीयुत पं० देवशर्मा जी 'अभय' विद्यालंकार,

गुरुकुल विश्वविद्यालय कांगड़ी के वेदोपाध्याय
तथा उपाचार्य (Professor of Ved and
Vice-Principal)

प्रकाशक—

सस्ता-साहित्य-प्रकाशक मंडल

अजमेर

१९२६

प्रथमबार २०००]　　मूल्य ॥)

प्रकाशक—
जीतमल लूणिया,
मंत्री—सस्ता-साहित्य-प्रकाशक मंडल अजमेर,

हिन्दी प्रेमियों से प्रार्थना

इस मंडल के स्थायी ग्राहक होने के नियम पुस्तक के अंत में दिये हुवे हैं। आप उन्हें एक बार अवश्य पढ़ लें और अपनी रुचि के अनुसार स्थायी ग्राहक बन कर व अपने मित्रों को बनाकर इसके प्रचार में हमारी सहायता करें।

मुद्रक—
गणपति कृष्ण गुर्जर,
श्री लक्ष्मीनारायण प्रेस, बनारस सिटी।

परिचय

कहावत है कि "वृक्ष अपने फलसे पहचाना जाता है", पर कभी कभी किसी नवीन प्रकारके फलके साथ उसके अप्रसिद्ध वृक्षका परिचय-प्रदान, फलकी उपादेयतामें हेतु हो जाता है। इसी विचारसे मैं फलोंका फ़ैसला ग्राहकों की—पबलिक की—परख पर छोड़कर वृक्षका बखान करने लगा हूँ।

इन विचार तरंगोंके सागर पं० देवशर्मा, गुरुकुल कांगड़ीके एक सात्त्विक स्नातक हैं (और अब वहींके वेदाचार्य हैं)। वहुत पतले दुबले कृशकाय तपस्वी हैं, अभी युवा हैं—२०-३० के बीचकी वयस है—पर इस तरुण तपस्वीके संयम और तपको देखकर बड़े बड़े साधु-पेशा उम्र-रसीदा बूढ़े बुज़ुर्ग (तपस्वी अर्जुनके प्रति इन्द्रकी) इस उक्तिका उच्चस्वरसे उच्चारण करनेके लिए विवश हो सकते हैं (यदि उनमें सत्य कहने का साहस हो!)

"त्वया साधु समारम्भि नवे वयसि यत्तपः।
ह्रियन्ते विषयैः प्रायो वर्षीयांसोऽपि मादृशाः॥"

कई वर्ष हुए यह विद्या व्रत स्नान करके शुद्ध स्नातक बन कर दूसरे आश्रमके अधिकारी हो चुके हैं, अपने वृद्ध पिताके एक मात्र कुल-तन्तु सन्तान हैं पर गृहास्थाश्रममें प्रवेश नहीं किया। यथा पूर्व ब्रह्मचर्य विधिका पालन कर रहे हैं, वही

वेष, यही दिनचर्य्या, भूमिशय्या, कौपीन वसन, सत्तू आदि सात्विक आहार, शान्त और विनीत आकृति, "शरीरबद्धः प्रथमाश्रमो यथा" । मितभाषिता, जो विचारशीलताका परिचायक गुण है, और शील सकोच, जो कुलीनताका चिह्न है, उसके आप एक उदाहरण हैं। देखकर 'जडभरत'की याद आ जाती है। इस शरीरको सचाई और दंभरहित स्वाभाविक सादगीकी चलती फिरती तस्वीर कहा जाय तो अत्युक्ति न होगी।

देवशर्माजी गांधी महात्माके पक्के भक्त और सच्चे अनुयायी हैं। कातनेको धुनमें अपने आदर्शके समान मस्त रहना आपका प्रिय व्यापार है, पर इसमें व्यापारिकताका भाव नहीं है जीवनका एक व्रत है। आपका कमरा देखिये तो फ़र्श पर बिछे एक काले कंबल पर रखी हुई कुछ पुस्तकें और काग़ज़, एकतरफ़ रखे एक या दो चर्खे तथा पूनियां, यही उस कमरेका सब सामान और फ़र्नीचर (Furniture) है। व्रतों और उपवासोंने इस कृशशरीरको कृशतर कर दिया है, दो दो महीने एक बार सत्तू खाकर ही बिता दिये जाते हैं, इतने पर भी बल और स्फूर्त्तिका अभाव नहीं है। यह जो कुछ कहते हैं सच्चे दिलसे अपना कर्त्तव्य समझ कर और चुपचाप एक कोनेमें बैठकर, प्रसिद्धिके लिये ढोल नहीं पीटते। उलटा अपने गुणोंको ऐबकी तरह छिपाते हैं। पर इस विज्ञापन-विज्ञान-प्रधान युगमें अज्ञात-वास असम्भव है। सूखी पत्तियोंके ढेरमें छिपे फूल को निगाहें ढूँढ़ ही लेता हैं।

"निगाहें कामिलों पर पड़ ही जाती हैं ज़माने की।
कहीं छिपता है 'अकबर' फूल पत्तोंमें निहाँ होकर ॥"

आख़िर यार लोग इन्हें भी 'छापे की मंडी' में खींच ही लाए 'ख़ानक़ाहके फ़कीर' को 'मदरसे' में ले आए। जो छिपते थे वह अब छपने जा रहे हैं!

वृक्षका बखान हो चुका, फलों पर अभी कुछ कहनेकी इच्छा नहीं है फिर भी कुछ तो कहना ही चाहिए, सनातन रीतिका उल्लङ्घन भी तो नहीं हो सकता। विचार-तरङ्ग माला का माली (लेखक) गांधीजी का अनन्य भक्त है, इसलिए विचारोंमें गांधीपनकी छाप है। देशभक्ति विषयक विचार इसी रंगके यानी गांधीजीके ढंगके हैं। लेखक को एक दूसरे महात्मा श्री अच्युत मुनिमें भी प्रगाढ़ श्रद्धा भक्ति है। अध्यात्मवाद उन्हींका प्रसाद है। इन दो महात्माओंके प्रभावसे प्रभावित होकर लेखक ने जो कुछ लिखा है अपने मनकी उमंग से लिखा है। विचारोंमें मौलिकता है, वेसाख़्तगी है बनावट नहीं। जो आया सो कह सुनाया कोरी 'आमद है आवुर्द नहीं'।

'तरंगित हृदय' के विचार मानस सरके वह मोती हैं जिन्हें आब नहीं दी गई, खानके ऐसे रत्न हैं जो सान पर नहीं चढ़े, ऐसे ख़ाके हैं जिनमें रंग नहीं भरा गया। इन्हें भाषा पनकी दृष्टिसे नहीं, भावगाम्भीर्यकी दृष्टिसे देखना चाहिए, किसी चर्बज़ुबान, जादूबयान लेकचरारके लेकचरकी शानसे नहीं एक सन्तकी वाणीके ध्यानसे पढ़ना सुनना चाहिए।

मतलब यह नहीं कि भाषा भद्दी है, नहीं, भाषा भी खरी चोखी है पर दार्शनिकता और आध्यात्मिकताके कारण वैसी नहीं जैसी कि आम लोग पसंद करते हैं।

पं० देवशर्माजी के इन लेखों को साहित्य परिषद्ने प्रकाशित करवा कर तथा सस्ता साहित्य-प्रकाशक मण्डलने प्रकाशित करके बडा उपकार किया है।

जगदन्तरात्मासे प्रार्थना है कि जिस उद्देश्यसे ये विचार प्रकाशित हो रहे हैं वह पूरा हो, इस तरुण तपस्वीका शुभ संकल्प सफल हो।

काव्यकुटीर, नायक नगला,
चांदपुर (बिजनौर)
ज्येष्ठ बदी ३ रविवार सं १९८३ वि

पद्मसिंह शर्मा

कृतज्ञता प्रकाश

गुरुकुल विश्वविद्यालय (कांगड़ी) हरिद्वार की 'साहित्यपरिषद्' संस्थाने अपनी यह श्री पं० देवशर्माजी लिखित 'तरंगित हृदय' पुस्तक हमें प्रकाशन के लिये दे देने की कृपा की है। इसके लिये हम 'साहित्य-परिषद्' के अत्यन्त कृतज्ञ हैं।

साहित्य के प्रसिद्ध विद्वान श्री पं० पद्मसिंह जी शर्मा ने 'परिचय' रूप से प्रारंभिक लेख लिख देने की कृपा की है। इस अनुग्रह के लिये उनके भी हम बड़े आभारी हैं।

मंत्री—

सस्ता-साहित्य-प्रकाशक-मंडल

अजमेर।

लागत का ब्यौरा।

काग़ज़	२३७)
छपाई	१९७)
जिल्द बँधाई	२९)
लिखाई विज्ञापन व्यवस्था आदि का व्यय	२१२)
प्रतियाँ २०००	६७५)

इसमें ८०० राजसंस्करण और १२०० साधारण।

राजसंस्करण प्रति पुस्तक की लागत	।=)
साधारण संस्करण प्रतिपुस्तक की लागत	।-)

सब विचारों के आदि स्रोत, हृदय के स्वामी,

परमपिता को

समर्पित करने के बाद

मैं यह

विचार-तरंगों की माला

अपने पूज्य, प्रातरभिवादनीय, शान्तमूर्त्ति, सरलहृदय, देव-
जीवन, बिना शोर किये बड़ा कार्य करने वाले, पर-
मात्मपरायण परोपकाररत, दुःखियों के आश्रय,
सच्चे त्यागी, सच्चे ब्राह्मण

श्री० पं० रामप्रसाद जी के

पितृ चरणों में सादर भेंट

उपस्थित करता हूँ।

पुत्र—

देवशर्मा।
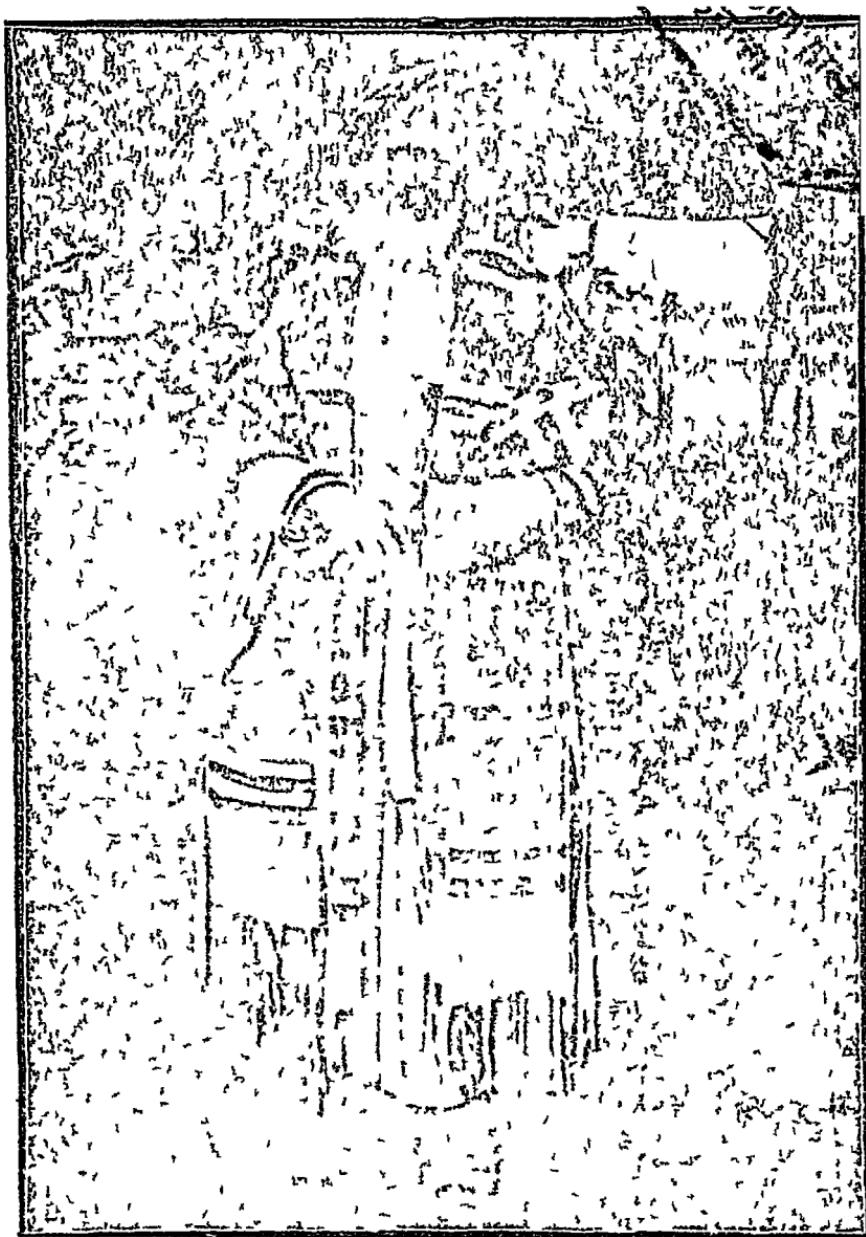
लेखक के पूज्य पिताजी

श्री पं० रामप्रसादजी शर्मा।

प्रस्तावना

अपने मानस-सर में उठने वाली कुछ विचारतरंगों को वाणी की स्वाभाविक 'फोटोग्राफी' द्वारा भाषारूप में चित्रित कर यह 'तरंगित हृदय' नाम से सहृदय सज्जनों के लिये संग्रह कर दिया है। ये सादे रंगरहित २१ चित्र हैं। भगवान् ने यदि मुझे 'कवित्व' कला प्रदान की होती तो मैं इन्हें रंगीन रच सकता और एवं बहुत से लोगों के लिये रुचिकर बना सकता। पर अब क्या करूँ? तोभी इस यंत्रालय के युग में जब कि जो कोई जो भी कुछ चाहता है छपा लेता है तो इन निर्दोष चित्रों के छपजाने से हानि तो कुछ है ही नही, बल्कि यदि कुछ लोग इन्हें भी देख कर प्रसन्नता प्राप्त कर सकें—मेरा सा 'मानस' रखने के कारण इन तरंगों में बहने का आनन्द प्राप्त कर सकें अर्थात् ये चित्र उनके मानस में भी ऐसी ही विचारतरंगें उठाने में समर्थ होसकें तो कुछ लाभ ही है। और यदि कही ये चित्र किन्ही को 'सच्चे धर्म' के स्वरूप दिखलाने में साधन हो सकें तब तो यह सब श्रम सफल हो समझा जायगा।

अन्त में यही कहना है कि इन लेखों में एक भी शब्द बिना पूरा विचार किये नही लिखा गया है, अतः यदि पाठक भी इन्हें मननपूर्वक पढेंगे—समय २ पर अवस्थाविशेष में इसके वाक्यों को पढेंगे—कई बार देखेंगे, तो आशा है कि ये लेख कुछ सेवाकारक सिद्ध हो सकेंगे।

गुरुकुलकांगड़ी
१३ वैशाख १९८३

पाठकों का सेवक
अभय

विषय-सूची

ओ३म्

विचार तरंगमाला

तरंग १

नमस्कार

हे जगन्मातः! मैं तुम्हें नमस्कार करता हूँ। अपने दोनों हाथोंको जोड़कर तुम्हारे चरणोंमें सिर झुकाता हूँ। अपने प्राण और अपान, सुख और दुःख, ईप्सा और जिहासा, राग और द्वेष, लाभ और हानि, मान और अपमान, जय और पराजय, सिद्धि और असिद्धिके दायें और बायें हाथोंको जोड़कर, हे मातः! मैं तुम्हारे चरणोंमे रखता हूँ। मैं अपने इन दोनों हाथोंको जोड़कर—पूरी तरह मिलाकर—ही अब प्रणाम करना चाहता हूँ और अपने अहंकारके मस्तकको झुकाकर सदाके लिये तेरे चरणोंमें समर्पित कर देना चाहता हूँ। मातः! मैं कब यह परिपूर्ण नमस्कारकर कृतकृत्य हो सकूँगा? मेरा तो परम परम पुरुषार्थ यही है कि कभी ऐसा अपना सर्वभावेन नमस्कार तेरे चरणोंमें निवेदन कर सकूँ।

❀ ❀

तुम्हे नमस्कार करनेके अतिरिक्त और मैं क्या करूँ! तुम

पुत्रकी सब कामनाओंको पूरी करनेवाली हो, इसलिये हे मातः, मुझे कुछ कामना नहीं रही है। तुम आवश्यक वस्तुओं-को निरन्तर हमपर वर्षा कर रही हो, इसलिये हे मातः! मेरी कुछ याचना भी नहीं है—प्रार्थना भी नहीं है। इसलिये मैं तो तुम्हें केवल नमस्कार करता हूँ, मूक नमस्कार करता हूँ और चारों दिगन्तों तक आँख उठाकर देखता हूँ कि तुझे नमस्कार करने के अतिरिक्त और मुझे करना ही क्या है।

❀ ❀

यह सब कुछ—यह सब अनन्त ब्रह्माण्ड—मुझे तुम्हारे पूजन के लिये ही मिला है। गुरुदेवने मुझे यही सिखाया है। "प्रातः से सायंकाल तक और सायंसे फिर प्रातःकाल तक मैं जो कुछ करता हूँ—जो कुछ चेष्टा करता हूँ जो कुछ इन्द्रियों-से कर्म करता हूँ, जो कुछ मनसे क्रिया करता हूँ, यह सब प्रतिक्षणका कर्म हे जगन्मातः! तेरा पूजन है। चौबीसों घंटे जो अन्दर रुधिर सचार होरहा है, जो हृदयकी धड़कन लगा-तार जारी है और जो कुछ अज्ञातरूपसे अन्दर नाड़ियों का स्पन्दन होरहा है यह सब तुम्हारा नाम-जपन है। हर समय जो मेरा एक एक करके श्वसन और प्रश्वसन हो रहा है यह अहोरात्रमें इक्कीस हजार छ सौ बार तुझे अखण्ड नमन है-प्राण द्वारा इतनी बार संतत नमस्कार है। अहा! क्या ही आनन्द है कि सब कर्म नमस्कारमें पर्यवसित हो गये। कैसी निवृत्ति, कैसी इति कर्त्तव्यताकी समाप्तिकी अवस्था है कि

सिवाय नमस्कार करनेके और कुछ कर्तव्य ही नही रहा।

❀ ❀

तुम्हारे सिवाय इस दुनियामें और कोई नमस्करणीय नहीं है। यह मैं जान गया हूँ। मेरा सिर संसारमें जहाँ कहीं झुकता है वहां तुम्हारा पवित्र प्रकाश पाकर ही झुकता है। जहाँ तुम्हारा प्रकाश नही है वहाँ यदि कोई बलात्कारसे भी मेरा सिर झुकाना चाहता है—डंडेके जोरसे झुकाना चाहता है, बन्दूकों और तोपोंका भय दिखलाकर झुकाना चाहता है तब भी नहीं झुकता। मालूम पड़ता है कि मेरा सिर टूट जायगा पर झुकेगा नही। किन्तु कही पर यदि तेरा कुछ भी प्रकाश दीख जाता है तो न जाने किस जादूसे मेरी इसी गर्दनमें वह लचक प्रकट होती है कि तुरन्त तेरे प्रकाश रूप चरणोंमें मेरा सिर जा पड़ता है।

ऐसा मालूम होता है कि मेरे सिरका यह स्वाभाविक धर्म है और तुम्हारे प्रकाशमें मेरे मस्तकके लिये कोई स्वाभाविक चुम्बक शक्ति है जिसके कारण सिर विना नमे रह ही नहीं सकता।

इस प्रकारके सतत अनुभवसे मैंने यह जाना है कि तुम्हारे सिवाय संसारमें और कोई नमस्करणीय नहीं है।

❀ ❀

मैं यह भी जान गया हूँ कि इस विश्वके सबके सब नमस्कारोंके एक मात्र भाजन भी तुम्हीं हो। सच्चे दिलसे जो कोई भी नमस्कार जिस किसीके भी प्रति किया जाता है हे

मातः! वह सब असलमे तुम्हें ही पहुँचता है। मुझे तो इस व्यावहारिक दुनियाँमें जब कोई नमस्कार करता है मैं वह नमस्कार हो मातः! तुरंत तुम्हें निवेदन कर देता हूँ। वह क्षणभर भी मेरे पास नही रहता। मेरे पास स्थान ही नही है जहाँ वह क्षणके लिये भी ठहर सके। मेरे इस भ्रमको दूर हुए तो चिर काल हो गया है कि मै भी कोई चीज हूँ जिसे कि नमस्कार लेनेका हक है। सब तुम्हें ही नमस्कार होते हैं चाहे नमस्कार करने वाला भी इसे समझे या न समझे। मै तो अपने एक २ कर्मको भी नमस्कारका रूप देकर तुम्हारे पास पहुँचानेका यत्न करता हूँ। फिर नमस्कारोंका क्या कहना है, वे चाहे दूसरोंके दिये हुए हों। ये सब तुम्हारे चरणार्पित है। हे मातः! इन्हें स्वीकार करो।

❀ ❀

मुझे बालकपनसे नमस्कार करना सिखाया गया था। मैंने अपने बड़े भाइयोंको नमस्कार करना सीखा। अपने माता और पिताको प्रणाम किया। गुरुओंके आगे सिर झुकाया। अन्य महात्माओं और संतोके चरणोंमें मस्तक रखा। पर जब मुझे पता लगा कि परम नमस्करणीया तो तुम हो, तब मै घबराहटमें पड़ गया कि अब तुम्हें मै किस प्रकार प्रणाम करूँ? तुम्हारे अदृश्य पैरोंको मैं कहाॅ पर ढूॅढूॅ? और यदि पैर मिल भी जावे तो तुम्हे नमस्कार करनेके लिये हाथ कहाँ से लाऊँ? किस सिरको तुम्हारे आगे झुकाऊँ? नहीं, तुम्हारे

चरण वह हैं जो इस संपूर्ण विश्वके अदृश्य आधार हैं। तुम्हारे दिये हुए सुखदुःखादि द्वन्द्वोंके रूपमें मेरे खुले हुए हाथ है जिन्हें बिना जोड़े–बिना मिलाए–तुम्हें नमस्कार करना असम्भव है। मेरे अन्दर 'अहङ्कार' का तत्त्व भी तुमने दिया है जो कि मुझे और सब व्यक्तियोंसे, तुमसे भी, विशेष बनाये रखता है अलग बनाये रखता है। इसी मस्तकको मैंने तुम्हारे आगे पूर्णतया झुका देनेके लिये ही अबतक ऊँचा किये रखा है। हे मातः! अब मुझे अवसर दो कि मैं अब अन्तमें तुम्हें भी प्रणाम कर लूँ और प्रणामकर कृतकृत्य हो जाऊँ।

❀ ❀

जब मैं यह देखता हूँ कि सब ब्रह्माण्ड अपनी बृहत्‌से बृहत्, महान्‌से महान्, विशालसे विशाल वस्तुओं सहित सब तेरे चरणोंमें गिरा पड़ा है, जब मुझे यह दृश्य दिखाई दे जाता है तो मैं भी अपना सब कुछ तुझे अर्पण करनेके लिये आतुर होने लगता हूँ और यह सचमुच अनुभव करने लगता हूँ कि तुम्हें प्रणाम कर लेना ही जीवनका लक्ष्य है। अपने एक २ कर्म रूपी नमस्कारों द्वारा, आठों यामोंके कर्मोंसे साष्टाङ्ग प्रणिपात करते हुए ही तेरे चरणोंको मुझे प्राप्त करना है और फिर तेरे चरणोंकी धूलिमें निश्चिन्त होकर लोटना है। तेरे चरणोंकी धूलिमें निश्चिन्त होकर लेटना !! इससे बढ़-कर और आनन्द क्या है, मोक्ष क्या है, प्राप्तव्य स्थान क्या है।

तेरा कौन है ?

तेरा कौन है !

तेरा अपना कौन है ?

और सब काम छोड़कर पहिले एक बार यह पता लगा ले कि तेरा अपना कौन है।

ये जो चारों तरफ़ अपनी चमक दमक द्वारा तेरा मन हरनेके लिये आते है, ये तेरे हृदयको शान्ति नही दे सकेंगे। जो बिना बुलाये मेहमान सजधज कर, चमकीले भड़कीले वेश बनाकर सदा तेरे इर्द-गिर्द घूमते रहते हैं, भ्रम में न आना कि वे तेरे नज़दीकी है। वे तुझसे बहुत दूर हैं, कोसों दूर है। जो अपनी मनोहर चेष्टाओंसे, वचनोंसे और अन्य नाना उपायोंसे तेरा मन बहलाते रहते है, तुझे आनन्दसे खिला देते हैं, उनके हाथोंमें, हाय ! वह दीपक नही है जो कि तेरे असली, अकेले, घनघोर, अँधेरे मार्गको प्रकाशित कर सकेगा।

जो सभी प्रकारकी सभा-समाजोंमे आकर एक निस्सार शब्दावली गरज कर सुना जाते है, क्या तू समझता है कि भँवरमें पडी तेरी नैय्याको वे पार लगा देंगे। जो हर एक

भीड़ भड़क्केके आगे शोर मचाते हुवे चलते हैं, क्या तू समझता है कि आवश्यकता पड़ने पर वे कभी तेरे काम आवेंगे ? जो जल पर फेनकी तरह सदा ऊपर ऊपर तैरते रहते हैं, क्या तू समझता है कि तेरी वे कुछ गहरी सेवा कर सकेंगे, तेरा उपकार कर सकेंगे ?

❀ ❀

जब शानके साथ तेरी रंगीली मण्डली इठलाती हुई घंटापथ पर निकलती है तब जो सड़कके एक किनारेसे चुपचाप गुज़र जाता है, शायद वही तेरा है ! जब भारी भारी जलसोंके घटनापूर्ण इजलास धूमसे हो रहे होते हैं तब जो मण्डपके एक कोनेमे आत्मनिरीक्षण करता हुवा बैठा होता है, शायद वही तेरा है ! जो समुद्र तलमे छिपे मोतियों की तरह केवल शालीनता और नम्रतावश तुझसे प्रेम रखता हुआ भी दूर रहता है, वह तेरा है ! और क्या, जो तुझे चमकानेके लिये तपाता है, तेरी तप-क्लेशकी अवस्थाको आनन्दसे निरीक्षण करता रहता है, वह निश्चय तेरा है !

विपत्तिकी सायंकाल आनेपर जब कि सब तेरे 'यार'— पखेरु स्वार्थ-साधन नामक ज़रूरी कामसे अपने २ बसेरोंकी तरफ़ उड़ जाते है तब जो तेरे साथ रह जाता है, वही तेरा है। जब इंद्रियोंकी शक्ति क्षीण हो जाती है, तेरा आशा-मय संसार प्रलीन हो चुका होता है तब तुझे थामने वाला चैतन्य जहाँसे मिलता है, वही तेरा है। जब सब तरफ़से हार हो

जाती है, कोई बस नही चलता, निस्सहायताकी पराकाष्ठा पहुँच जाती है तब जो ठीक समय पर आकर तेरा हाथ पकड़ लेता है, वही एकमात्र तेरा है !

❀ ❀

अबके यदि उसकी धुँधली सी भी मूर्ति दिखायी दे जाय तो उसपर दृष्टि जमा देना। ऐसी टिक-टिकी बँध जाय कि जीवन भर फिर वह आँखोसे ओझल न हो। यदि अब कभी फिर तेरी शरणागतकी अवस्थामें उसके करुणा-हस्त का अवलम्बन मिले तो उसका सहारा न छोड़ना। दुनियाँ के थपेडोंसे चलायमान दशाओंमें भी वह अवलंबन छूटने न पाये।

भाई, संसारमें अपना-पराया जानना बड़ा कठिन है पर इसके बिना कुछ बन नही सकता। यदि परायेको अपना समझ लिया तो केवल पछताना होगा। पछताना, पछताना, इसके सिवाय और कुछ नही। इसीलिये कहना पड़ता है कि और सब धन्धे छोडकर पहिले एक बार यह पता लगा ले कि तेरा कौन है, तेरा अपना कौन है ?

चातक का वैराग्य

रमणीय सलिलवाहिनी नदियाँ कल्लोलें करती हुईं स्वच्छन्द वहें। बड़े २ महासागर इस पृथ्वीपर जलसे भरपूर पड़े रहें। किन्तु चातकको इनसे कोई प्रयोजन नहीं। इन भूलोकके जलोंमे अब उसकी तृष्णा नहीं रही है। उसने तो आकाशकी तरफ मुँह फेर लिया है; वहींसे आयी हुई दिव्य धाराये अब उसके कण्ठको शान्ति दे सकती हैं।

निःसन्देह यह भूतल जलसे प्लावित है, सब कहीं पीनेके लिए सुगमतासे पानी मिल सकता है परन्तु उसे तो यहाँके जलोंकी—यहाँके मधुरसे मधुर और शीतलसे शीतल जलोंकी—अनुपादेयताका पूरा २ ज्ञान हो चुका है, यहांके सभी जल इसी प्रकारके हैं। मृत्युलोकके अन्य प्राणी इन्हें पीयें—भरपेट पीयें,—उनके लिये ये खुल्ले छोड़े पड़े हैं। किन्तु चातक इनसे दूर रहेगा। वह इन्हें जानता है। इनमें उसका ज़रा भी राग नहीं है। प्यासा रहना कोई बडी बात नहीं है किन्तु त्यागे हुए-का ग्रहण कदापि न होगा। यदि ज़रूरत होगी तो कभी स्वर्गसे सुधासम सलिल स्वयमेव गिरेगा।

वस्तुतः व्रत बड़ा कठिन है। कौन है जो जलोंको सामने बहता देख प्यासा रह सकता है?

❀ ❀

इस महाव्रतको धारण किए पर्याप्त समय हो चुका है। धीरे धीरे कहीं जाकर वर्षा ऋतु आयी है और कभी कभी मेघमालायें भी दिखलायी देकर कुछ आशा बँधाती है, किन्तु अभी तक चातकका कण्ठ सूखाका सूखा पड़ा है। दूरसे आती हुई ठण्डी पवन कभी कभी शीतल जल-पूर्ण मेघों के शुभागमनका सदेश लाती है और बदन को हर्षित कर देती है, परन्तु यह सब भी आशा ही आशा रह जाती है और कोई भी मेघ दो बूँदे नहीं दे जाता। तथापि महाव्रती चातक सब कुछ त्यागकर दृढ़ विश्वास में चुपचाप ऊपर मुख किये बैठा है। पूर्वदिशासे काले मेघ जलभारसे-अवनत-उदर आते हैं किन्तु देखते ही देखते सीधे पश्चिमकी ओर चले जाते हैं—डाक-गाड़ीकी तरह एक क्षण भी इस स्टेशनके ऊपर नहीं ठहरते। अहो! क्या ही, अद्भुत कौतुक है। पर वैरागी अपना मगन बैठा है।

तब क्या चातक प्यासा ही रह जायगा? क्या अब उसे अपने प्राण त्यागने होंगे या इस अन्त समयकी व्यथामें वैराग्य छोड़ फिर संसारी बन कर अपनी रक्षा करनी होगी? ये सब आशकाएँ निरर्थक और निर्मूल है। चातक चित्तमे असंदिग्ध है कि यह प्यासके मारे यदि धरणीतलपर मूर्छित हो गिर भी

पड़ेगा, तो भी उसे चेतनामें लानेके लिए यदि कोई आयगा तो स्वयं इन्द्र स्वर्गीय जलोंको लेकर आयेंगे और चैतन्य प्रदान करेंगे। सांसारिक जलोंके छींटे उसे प्रबुद्ध भी न कर सकेंगे। उस समय भी उसकी सदा जागृत आत्मा इन त्यक्त जलोंकी उपेक्षा ही करेगी—इनके स्पर्शका असर अनुभव न करेगी। सच है, क्योंकि सांसारिक वस्तुये तो अपने सौन्दर्य और माधुर्यसे लोगोंको सदैव मोहित ही कर सकती है, इनमें मोहमूर्छासे लोगोंको जगानेकी शक्ति कहाँ?

❀ ❀

भाई घबराओ नहीं, सन्तोष रखो, परीक्षामें उत्तीर्ण होओ, जो त्याज्य है उसे त्यागे ही रखो तो सब कुछ ही मिल जायगा मिलनेका नियम तो अटल है। केवल कठिन परीक्षामें दृढ़ निकलनेकी देर है। भला जिसने [विजातीय] सांसारिकता बिलकुल दूर कर दी है, उसे [आत्मीय] दिव्यता कैसे न मिलेगी—आज न मिलेगी तो दो दिन बाद मिलेगी, पर मिलेगी। और फिर उसे क्या नहीं मिलेगा? पर त्यागो तो सही। एकबार तृष्णाको त्यागो, व्यासमुनि पर विश्वास करो कि:—

यच्च कामसुखं लोके, यच्च दिव्यं महत्सुखम्।
तृष्णाक्षयसुखस्यैते नार्हतः षोडशी कलाम्॥"

इन बिजली भरे वाक्योंसे अनुप्राणित होकर एकबार त्याग कर देखो तो।

तुम ज़रा सा त्यागते हुए व्यथासे व्याकुल हो जाते हो,

कलेजा निकलासा जाता है। 'हाय मैं मरा, हाय मैं गया'। किन्तु एकबार अपनेको जाने तो दो और देखो।

अरे नादान ! तू किस घबराहटके चक्करमें पड़ा है, किस मोहमें फँसा है. तुम्हें ज्ञान नहीं कि जिसने तृष्णाको जीत लिया है उसे प्यास कहाँ सताती है, उसे मूर्छा कहाँ अचेतन कर सकती है। उस अमृतको मारनेके लिए मौत कहाँसे आयगी ? अरे, त्यागनेमें भय कहाँ है। केवल तृष्णाको छोड़ो, एकबार अपना सब कुछ अर्पण कर दो और बैरागी बन कर अटल विश्वासमें बैठ जाओ, तो देखो कि तुम्हें अपनानेके लिये स्वयं प्रभु अपने सिंहासनसे उतरते हैं कि नहीं।

बीहड़ मार्ग

तुम यहाँ कहाँ? तुम इस जंलगमें कहां आ भटके? तुम ठण्डी सड़क पर सैर करनेवाले, सदा मोटरकार पर चढ़े रहनेकी इच्छा रखनेवाले, तुम इस कीचकन्टकाकीर्ण मार्ग-पर पैदल फिर रहे हो?। यहाँ तो रास्तेके दोनों ओर चाटकी दुकाने नहीं लगी हैं, तुम्हारा जी बहलानेको एक भी मानव प्राणी दृष्टिगोचर नही होता, यहां क्या खाओगे? किस सेज पर सोओगे? तुमसे यहां कैसे रहते बनेगा। यहां तो वन्य जीवोंकी चिंहाड़ तुम्हें भयाकुल कर देगी। जाओ भाई, प्यारे भाई! उसी अपने स्थानपर लौट जाओ। इस मुसीवतमें कहां आ फसे हो।

यह सच है कि तुम्हारा सुखचैनका रास्ता कभी कभी अपने छिपे हुवे दाँतोंसे तुम्हें डस लेता है और तब तुम झुंझला कर उसे छोड़ इस 'बीहड़ मार्ग' पर चलनेकी जीमें ठानकर यहां आजाते हो। परन्तु इस मार्गकी कठिन चढ़ाईमें शायद अब तुम उस डसनेकी सब पीड़ा भूल चुके होगे और अब वहांके आनन्द बार २ याद आते होंगे। इसलिए अपनेको अब अधिक कष्ट न दो। लौट जाओ और चैन करो। अभी तुम्हारे

इस राहपर चलनेका समय नहीं आया है। अभी बहुत देर है। अन्तमें कभी जब कि ये विष-भरे दाँत तुम्हें हर समय डसते हुए मालूम होने लगेंगे, जब कि वहांके भरे हुवे बाजार तुम्हें सुनसान श्मशानकी नाईं दीखने लगेंगे, जब कि वहांकी मधुर तानें तुम्हारे कानको चुभने लगेंगी और वहांका हर-एक भोजन कडुवा लगने लगेगा, उस समय इस मार्गको स्मरण करना। तुम्हारे उस विचित्र दुःखके समयमें यह मार्ग तुम्हें अपनी शरणमें लेगा और तुम्हें एक अननुभूतपूर्व आनन्दकी ओर ले जायगा। अभी वह समय दूर है।

❀ ❀

लोगोंको घेरघारकर यहां मत लाओ। यह उचित नहीं। इससे कुछ फायदा नहीं। क्षण भरके लिये कुछ समझाकर उनकी आन्तरिक इच्छाके विरुद्ध उन्हे अपने आनन्दोंसे वियुक्त मत कर डालो। यह पाप है। जिसको आना है, वह स्वयं आजायगा—वह रोकनेसे भी रुक नहीं सकता।

तुम लोगोंको क्यों घेरघार कर लाते हो? शायद तुम इस मार्गकी निर्जनता और नीरसतासे जब तङ्ग आजाते हो तो यह सोचकर कि "नीचेसे साथियोंको लाकर आनन्दसे यह रास्ता काटेंगे" नीचे चले आते हो। यह भूल जाते हो कि यह मार्ग मित्रोंसे गप्पे मारते हुए तय करनेका नहीं है! यह तो बड़े ध्यानपूर्वक, जप तप करते हुए, बिलकुल अकेले चुप चाप चलनेका मार्ग है! यदि चढाईसे थक गये हो तो

अच्छा है कि यहीं बैठ जाओ विश्राम करलो, न कि किसी चट्टानेसे नीचे उतर जाओ। यहां पर नवजीवन भरनेवाले ठंडी पवनके झोंके तुम्हारी थकावट दूर कर देंगे और शीघ्र ही आगे बढ़नेको तरोताजा बना देंगे।

जब तुम स्वयं आगे नहीं चल सकते, तो नये साथियोंको कैसे चलाओगे। इसलिए भाई! लोगोंको घेरघारकर मत लाओ—उन्हें मुफ्तमें दुःखमें मत डालो। इससे क्या फायदा है? इस स्थानपर जनसंख्या बढ़नेसे उन्नति नहीं होती है। जिसको आना है वह ज़रासे इशारेसे ही आजायगा—वह कष्टके भय दिखानेसे भी रुक नहीं सकता।

❀ ❀

जिन्हें भूख सता रही है उन्हें तुम कहते हो कि वे भोजन त्याग दें और ईश्वर भजन करें। जो प्याससे व्याकुल हैं उन्हें तुम वितृष्ण होनेका उपदेश देते हो। तब यदि वे तुम्हारी बात नहीं समझते इसमें आश्चर्य्य ही क्या है? तब वे तुम्हे Idealistic या पागल कहके तुम्हारी बातका तिरस्कार करते हैं इसमें विस्मय क्या?

यदि तुम्हें स्वयं भोजनकी ज़रूरत नहीं रही है तो अपनी थाली भी उन्हींके आगे रख दो। इसीमें दोनोंका—वस्तुतः दोनोंका—कल्याण है। जिसने तुम्हारा कल्याण किया है वही उनका भी कल्याण कर रहा है और करेगा। वही उन्हें राह दिखायगा। उसे सबकी समान फिकर है।

भला शहरकी गलीको बिना समाप्त किये कोई जंगलकी पगडंडी पर कैसे पहुँच सकता है।

❀ ❀

जब कभी मैं इस बीहड़ मार्गकी तरफ जाता हूँ तो वहांके लोग "आओ फलाने" कहकर कोई मेरा स्वागत नहीं करते और नाही आश्लेष करनेके लिये दौड़े आते हैं—किन्तु वे सब अलग २ अपने २ ध्यानमे निरपेक्ष हो बैठे रहते हैं।

उन्हें मेरी अपेक्षा नहीं है। सच तो यह है कि इस 'उच्चपथ' ने हमारा स्वागत नहीं करना—किन्तु हमेंही इसके चरणोंमें सिर झुकाना और पूजा करनी है।

यहाँ पर नये आगन्तुकको रिझानेके लिये उसकी शुरूमें कोई ख़ातिर तवाज़ो नहीं की जाती, और नही कुछ दिनों उससे आनन्द लेनेके बाद उसे छूछाकर त्याग दिया जाता है। किन्तु यहाँ प्रविष्ट आत्मा ज्यों ज्यों इस नीरस शून्य स्थानमे रहता है त्यों त्यों इसका पवित्र माधुर्यमय रूप उसके लिये दिनो दिन अधिक २ प्रकट होता जाता है उसे अपनाता जाता है।

इस लिए मेरे भाई लोगों! स्मरण रखना कि यह दुर्गम-पथ कभी हमे फुसलानेके लिये नहीं आयेगा किन्तु हमें ही स्वयं जब जाना होगा तो इसके मूल्यको समझकर स्थिर शान्ति पानेके लिए सत्कारपूर्वक इसके आश्रयमे जाना होगा॥

सतानेवाला कौन है ?

ये कौन है जो मुझे अदृष्ट तीरोंसे वार २ मार रहे हैं। तीरोंके लगनेपर मैं चारों तरफ़ चौक चौंककर देखता हूँ और ढूँढता हूँ, किन्तु किसी भी धनुर्धारीको नहीं देख पाता। फिर न जाने ये कौन हैं जो सभी ओर पूर्व, पश्चिम उत्तर और दक्षिणमें अपने तीरोंसे मेरे अंगोको छेदते जा रहे हैं। मैं बड़ा पीड़ित हो रहा हूँ। हाय, ये मुझे कबतक सताये जाँयगे ? एक तीरकी पीड़ा अभी बन्द नहीं हो पाती कि इतनेमें दूसरा तीर आ लगता है। एक ही दिनमे कई बार घावपर घाव लगते है। घावोंसे पीड़ित हो मै चिल्लाता हूँ और सोचने लगता हूँ कि मै ज़िन्दा क्यों रह रहा हूँ ? किन्तु आशा पीछा नही छोड़ती। जब कभी कुछ घड़ियाँ भी शान्तिसे वीत जाती हैं तो समझने लगता हूँ कि शायद अब अच्छे दिन आगये। परन्तु फिर कही न कहींसे ऐसा तीर आ लगता है कि सब भूल जाता है और मै अपनी असली अवस्थामें आ जाता हूँ। इस तरह मैं रह रहकर सताया जा रहा हूँ। हे राम, मैं क्या करूँ ?

❀ ❀

मैं अपना सताने वाला किसे कहूँ और किसे न कहूँ। कौन वस्तु है जिस ओरसे ये तीर नहीं बरस जाते? पहिले मैं वेशक किन्हीं प्राणियों और किन्हीं वस्तुओंको अपना दुःखदाता समझा करता था किन्तु अब धीरे २ जाना है कि यह सब संसार ही दुःखका घर है। क्योंकि संसारको सभी वस्तुएँ (एक २ वस्तु) चुभने वाली है। इस संसारमें किसी दिशामें चले जाओ किसी दशामें रहो ये सब अच्छी भली दीखने वाली वस्तुएँ ही तीक्ष्ण तीर बरसाने लगती हैं। इतने कालके बाद भी मैं यह तो नहीं जान पाता हूँ कि इन वस्तुओंमें ये तीक्ष्ण तीर कहाँसे उपजते हैं, पर मैं इतना अवश्य देखता हूँ कि इस संसारमें सब कहीं ये तीर बरस रहे हैं।

❀ ❀

मैं व्याकुल हृदय सब जगहोंमें फिरता हूँ किन्तु इस वर्षासे रहित भूमि (मरुभूमि) कहीं नहीं मिलती जहाँ कि यह तीर वर्षा न होती हो। चाहें शिमलेकी ऊँचाई पर जा बसो, चाहे गंगातटकी शरण लो, चाहें काबेकी यात्रा करो, चाहे सब तीर्थोंकी परिक्रमा कर डालो। मैंने सब तपोवन भी छान डाले किन्तु इस तीर वर्षासे परित्राण कहीं न पाया। वर्षामें मैंने समझा था कि शायद ग्रीष्मके दिनोंमें ये तीर चुभने बन्द हो जाँयगे, किन्तु इस वर्षाकी कोई ऋतु भी न पायी। सभी ऋतुएँ इसके लिये वर्षा ऋतु हैं। भ्रमहीसे मैंने वसन्त ऋतुके सुखधाम और दुःख विश्राम होनेका स्वप्न देखा और व्यर्थ ही

सुखभरी प्रतीक्षासे गर्मीके क्लेश-वर्षाके लम्बे २ दिनोंमें शरद् ऋतुकी बाट जोही।

बालकपनमें मैं समझता था कि विद्यालय (स्कूल) छोड़ उच्च विद्यालय (कालेज) जानेपर ये क्लेश बन्द हो जायँगे और उच्च विद्यालय (कालेज) में समझा था कि पढ़ाई छोड़-कर स्वतन्त्र होनेपर अवश्य इन क्लेशोंसे छुटकारा हो जायगा। इसी तरह एक २ जगहमें माना था कि इस जगहको छोड़ दूसरी जगह जानेसे ये सब दुःख मिट जायँगे और सदैव वर्त्तमान पेशे व वर्त्तमान स्थितिसे तंग आये रहकर दूसरे पेशे व दूसरी स्थितिकी तीव्र इच्छा रखी थी। किन्तु हाय, ये सबके सब झूठे सुपने थे। यह क्लेश-वर्षा कही थमनेवाली नही है।

यदि कहीं जाकर स्थिरतासे बैठ जाता हूँ और बैठकर इन तीरोंके प्रहारोंसे बचनेके लिये जो जो तदबीरें करता हूँ वे भी सब निष्फल जाती हैं। बचनेके लिये मैं नयी २ आशाके साथ नयी २ आड़े खड़ी करता हूँ किन्तु अन्तमें देखता हूँ ये आड़ें ही तीर बरसाने लगती हैं। इस प्रकार न मुझे फिरते चैन है और न बैठकर चैन है। हे भगवन्! मैं घबराया हुवा हूँ। हे राम! तुम्हीं बतलाओ इनसे मैं कैसे बचूँ, तुम्हीं बत-लाओ ये सब जगह सतानेवाले कौन हैं ?

❀ ❀

कई बतलाते हैं कि मुझे सतानेवाले स्वरुपमें कोई अदृष्ट तीर नहीं हैं किन्तु एक प्रकारके विषैले कीड़े हैं। इस दुःख-

मयी दुनियाँके आरम्भमें एक पिंडोरा नामी कहानीको लड़की*ने कौतूहलवश उस संदूकको खोल डाला था, जिसमें तीक्ष्ण डंकोवाले यह कीट पतंग दुनियाँको दुःख देनेके लिये भरे गये थे। हाय! येही वे उड़नेवाले कीड़े है जो मुझे हर जगह और हर समय अपने विषैले डंक मारते फिरते है। हे मेरे स्वामी! क्या यह क्लेश कभी ख़तम न होंगे? क्या दुनियांमे अब कोई उपाय नहीं जिससे ये अदृश्य कीड़े फिर संदूक में बन्द किये जा सके? क्या अनन्त कालके लिये मैं इन कीड़ों का खाद्य बना रहूँगा?

❀ ❀

"हे प्रभो! रक्षा करो, मै मरा जाता हूँ। तीरोके मारे मेरा देह चलनी हुआ पड़ा है। मैं सारी दुनियाँमें मारा २ फिरा, किंतु कही भी चैन नही पडी। अब और कहाँ जाऊँ! कहाँ पर आश्रय पाऊँ? कुछ नहीं सूझता। चारों ओरसे सताया जा रहा हूँ। अपने दुःख दाताओंका पता लगाते २ (और उन्हें न पाकर व्यर्थ चेष्टायें करते २) मै मर मिटा हूँ, अपने विदीर्ण हृदयको पकड़े २ संसार का कोना २ ढूँढ डाला। अब अधिक शक्ति नही है। क्या करूँ? क्या अब कोई उपाय नही है? हे प्रभो! यदि तुम हो, स्वामी और रक्षक हो तो बचा लो। मै सदाके लिये मरा जाता हूँ।"

❀ ❀

* एक प्रसिद्ध पुरानी ग्रीक कहानी के अनुसार।

इस प्रकारसे मैं न जाने कबसे चिल्लाता और बिलबिलाता रहा हूँ। व्याकुल हो इधर उधर तड़फता फिरा हूँ। अन्तमें आज बिलकुल थककर और अधमरा होकर इस क्लेश-वर्षामें ही बेबस पड गया हूँ, और ज्योंही अचानक अपनी उन बाहर देखनेवाली, थकी हुई आँखोंको, जिन्हें फाड़फाड़कर मैंने ससार भरमें अपने सतानेवालोंको गहरी नज़रसे ढूंढा, और जिन आँखोमें अब अधिक शक्ति नहीं रही है कि खुली रहे तथा चीज़ोंको देखें, मैंने विवश हो बाहरसे बन्द कर लिया त्यों ही मुझे अन्तरीय दृश्य दीख पड़ा। मैं अपने अन्दरके दर्शन करके आज एकदम स्तब्ध रह गया! उन अपने तीर बरसाने वालोंको जिनकी खोजमें मै सारा जहान ढूँढकर निराश हो गया था, आज मैंने अपने अन्दर ही, अपने अन्तःकरणमें ही, तीर कमान कसे खड़े हुवे पाया और अधिक अन्तर्ध्यान होनेसे मुझे अब ज्ञान हो रहा है कि इनके हाथमें उन धनुष बाणोंका पकडानेवाला मैं ही मूर्ख हूँ। जिनके द्वारा मारा हुवा मैं आज तड़फ रहा हूँ।

❀ ❀

आज अन्दर देखनेसे दीख रहा है कि क्लेश-वर्षा करनेवाले वे बादल जिनका मुझे पता न चलता था, मेरे हृदयाकाशमें ही मँडरा रहे है और मैंने अपने संतप्त कलेवरसे ही वाष्प देकर उन बादलोको बनने दिया है। अब पता लगता है कि पिंडोराका सन्दूक कोई बाहरकी चीज़ नहीं जो पिंडोराके

घरके दरवाजे पर रखी हुई थी किन्तु यह विषैले जन्तुओं-वाला बाहरसे सुन्दर और मनोहारी सन्दूक़ मेरे मन-मन्दिरमें ही खुला पड़ा है और यदि सच कहूँ तो मैनेही यह स्वयं खोला है तथा अब मै जानता हूँ कि मैंही चाहूँ तो इसे बन्द कर सकता हूँ।

❀ ❀

धन्य है आजका दिन! कृतकार्य हुआ आजसे मेरा जीवन! सुफल हुये आज वे मेरे अनादिकालीन पीड़ायें और मरणान्त क्लेश, जिनसे अत्यन्त पीड़ित होकर आज मै विवश हुआ कि अपने अन्दर देखूँ। अन्धकारका महान् समय बीत गया और आज प्रकाशके शुभ दर्शन हुवे। उसे आज देख लिया, जिसकी तलाशमें व्याकुल इधर उधर क्लेश भोगता फिरा।

आज दुःखदाताको पहिचान लिया है। मैं आज दृढ़तासे कहता हूँ बाहरकी कौनसी चीज़ है जो मुझे अब क्लेश पहुँचा सके। मुझे अब कौन सतायेगा, जब कि मैंने अपने हृदयको हस्तगत कर लिया है। अब कौन डङ्क मारेगा जबकि मैंने वह सन्दूक बन्द कर लिया है। आजसे सब क्लेश समाप्त है। क्या मजाल कि आजसे दुःखका एक भी तीर मुझे स्पर्श कर जाय, चाहे मैं महलको छोड़कर घनघोर जङ्गलमे जा बसूं चाहे शिमलेकी कोठीसे उतरकर रेगिस्तानकी गरमी मे रहूँ, चाहे सब कपड़े उतारकर हेमन्तकी शीतमें नङ्गा फिरना प्रारम्भ

करूँ। आ जाओ, दुनियाँकी सब व्यथाओं आ जाओ, देखूँ कौनसी व्यथा है जो मुझे अब दुःखी कर सकती है ?

❀ ❀

मुझे बैरी समझनेवालोंके कटु वाक्य-रूपी तीर मेरा क्या करेंगे यदि मैं उन्हें अपने भाइयोंके प्यारे मुग्ध वचन समझकर सुन लूँगा। कालकूट ज़हर मेरा क्या बिगाड़ेगा, यदि मैं उसे अमृत समझकर पी जाऊँगा। मेरे काल्पनिक शत्रुओंके फेंके हुवे ईंटे, पत्थर मेरे अङ्गोंको क्या पीड़ा पहुँचायेंगे, यदि मैं उन्हें फूलोंकी वर्षा समझकर आनन्दसे स्वीकार करता जाऊँगा।

❀ ❀

वे भयानक रोग जिन्हें मेरे पूर्व पाप कर्म बुला गये हैं, अपनी असह्य पीड़ा और दर्दोंके साथ आवें और बड़ी खुशीसे चले आवें मुझे कोई परवाह नहीं, क्योकि मै उन सब दुख-दर्दोंको अपनी शुभ सहन-शक्तिके पारस पत्थरसे सुख और शान्तिमें परिणत कर लूँगा।

और भी विपत्तियाँ और आफते जो आना चाहें आवें, मैं उन परम सुखके पहुँचानेवाली सीढ़ियों पर पैर रखकर चढ़ता जाऊँगा और आनन्दसे ऊपर देखूँगा कि परम सुखका सुन्दर मन्दिर नज़दीक आता जा रहा है।

मेरे दरवाजे खुले हैं। सब तरहके कष्ट और क्लेशोंको खुला निमन्त्रण है। यह निःशङ्क अन्दर घुस आवें। किन्तु अन्दर पहुँचते ही उन्हें अपना दुःखदायी और भयावह चोला

उतारकर अपने सौम्य सुखद स्वरूपको स्वीकार करना पड़ेगा, जब कि उनको प्रभुके अटल नियमोंके भेजे हुवे तथा उन्नतिका संदेशा लानेवाले दूत समझकर मैं उन्हें आतिथ्य सत्कारसे सन्मनित करूँगा।

❀ ❀

जब कि सारे जीवन भर मैं एक ही धुनमें निमग्न रहूँगा तो कौनसा क्षण मिलेगा जब कि मैं किसी अकर्मण्यता व चिन्ताके क्लेशको मुलाकातके लिये बुला सकूँगा। जब कि मैंने सदाके लिये दृढ़ताके दुर्भेद्य कवचको धारण कर लिया होगा तो कौनसा मार्ग होगा जिससे दारुण दुख मुझे पीड़ित करनेके लिये अन्दर घुस सकेगा। जब कि मेरे चारों दिशाका वायु मण्डल मेरी अहिंसाव्रत और अभयदानकी सुगन्धिसे परिपूर्ण हो रहा होगा तो मै किधरसे आशा करूँ कि मुझे मारनेके लिये किसी भय व त्रासके क्लेश कीटाणुका प्रवेश हो सकेगा। जब कि मैं सदैव ही अपने ऊपर आनन्द-मग्नकी घनी छत्र-छायाको अनुभव करता रहूँगा, तो कौनसा अवसर हो सकेगा जब कि शोक और रञ्ज ग़मकी कड़ी धूप मुझ तक पहुँच मुझे संतप्त करेगी।

❀ ❀

निःसन्देह जब मैं वेगसे सत्यके मार्ग पर बढ़ता हुआ जा रहा हूँगा तो मार्गमें अड़नेवाली आपदा और मुसीबत की सांकले टूट टूटकर गिरती जांयगी।

वे विचार जोकि मेरे मनको मलीन और खिन्न करनेके लिये आवेंगे उलटे पैरों चुपकेसे लौट जायँगे, जब कि देखेंगे कि मेरा मन एकाग्रताके अदम्य सन्तरीसे रक्षित हैं।

जब कि मैं परमात्माकी आज्ञाको ही अपना लक्ष्य, उद्देश्य और आंखोंका तारा मानकर उसीकी ओर टकटकी लगाये अपने मार्गपर जा रहा हूँगा तब कोई भी सम्भावना नहीं कि कभी इधर उधर जलनेवाली प्रतिष्ठा-लालसाकी दुःख चितान्गि में पतित हो जाऊँ।

❀ ❀

ऐ अपने को शक्तिशाली समझने वाले अन्यायी! तेरे भीरू अत्याचारमें क्या शक्ति हो सकती है? तू अपने अत्याचारोंसे मुझे क्या सता सकता है? मेरे शरीरको भले ही तू शिकंजे-में कसवा ले, कुत्तोंसे बोटी २ करके कटवा ले, खाल उध-ड़वाके खौलते तेलमें नमक मिर्चके साथ तलवा ले और जो कुछ सूझे उस उपायसे इस निश्चेतन शरीरकी जितनी चाहे दुर्गति करता फिर, परन्तु तू मुझे कैसे सतायेगा? वह कौन सा शस्त्र है जिसे चलाकर तू मुझ सुख दुःखके अनु-भव-कर्ता पर अपने क्रूर अत्याचार करेगा, जब कि मेरा साधन मन मेरे ही अधीन है? यदि तेरी अत्याचारी तलवार मुझे सतानेके निश्चयसे मुझ तक पहुँचेगी, तो वह निस्सन्देह मेरे शरीरपर ही लगकर रह जायगी तथा अपने घातक

प्रहारका दुःख मुझ तक न पहुँचा सकनेके कारण अपनी कमजोरी अनुभव करेगी।

❀ ❀

ये संसारकी सरकारें मनुष्यके लिए बड़ी डरावनी चीजें मानी जाती है। संसारमें बहुतसे धार्मिकोंपर इन सभ्य अत्याचारियोंके किये हुए जुल्म प्रसिद्ध है। इनके किए हुए अत्याचार ऐसे समझे जाते है कि जिनका इलाज प्रजाके पास नही है। परन्तु भला धर्म-पथके यात्रीको कौन संसारमें सता सकता है?

धर्म-कार्य्य करते हुए यदि कोई सरकार मुझे बलात् अन्यायसे पकड कर कलंकित करना चाहेगी, तो उलटा देखेगी कि सब जगह मेरा यश मुफ्तमे फैल रहा है। मैं नहीं जानता कि उसके जेलखानेकी ऊँची २ मोटी दीवारें मुझ स्वतन्त्र जीवको कैसे क़ैद कर सकेगी। ये जेल तो मेरा ध्यान-मन्दिर बन जायँगी। (ओह ये वही जेल है जिन्हें कि बहुतसे धर्मवीर अपनी चरण-रजसे पवित्रकर गये हैं और इन्हें तीर्थ भूमि बना गये हैं)। उस समय मेरे हाथों और पैरोंमें पड़ी हुईह थकड़ियाँ और वेड़ियाँ मुझे क्या जकड़ सकेंगी, वे तो मेरा आभूषण बनकर मेरे हाथों और पैरोंको अलंकृत कर रही होंगी।

❀ ❀

हे राजाओं! मानवशक्ति अधिकसे अधिक कहाँ तक पहुँच सकती है? शायद अन्तमे मृत्युको ही क्लेशकी परा-

काष्ठा समझकर तुम सतानेके लिये मुझे मृत्यु दण्डकी आज्ञा सुना दोगे, तो मैं हँसता खेलता सूलीकी खूँटीपर अपना पुराना जीर्ण चोला लटका हुआ छोड़कर परम पिताके पास नया वस्त्र धारण करनेके लिये आनन्दसे पहुँच जाऊंगा। इससे ज्यादा और क्या हो सकता है ?

हे राज्यशक्ति ! तू इससे ज्यादा मेरा और कुछ नहीं कर सकती, चाहे तू अपने पूरे साज और सामानके साथ मुझ-पर आ, चाहे तू अपनी सुसज्जित डरावनी चतुरङ्गिणी फौज़के साथ मुझ अकेलेपर आक्रमण कर, चाहे तू अपनी भुवनोंको कँपानेवाली तोपोंकी घरघराहटके साथ मुझपर चढ़ आ।

❀ ❀

ऐ मौत ! तू विकराल 'काल' कहलाती है। लोग कहते हैं कि "तू बड़ी डरावनी है, तेरा नाम सुनते ही दिल कांप उठते हैं। संसारके बड़े २ लोग मौतके आनेपर छटपटाते मर गये उनकी कुछ न बन पड़ी।" किन्तु हे प्यारी मौत ! यह सब झूठ है। यदि तू ऐसी ही होती तो फॉसीका हुक्म सुननेपर उस बंगालीका आनन्दके मारे दो सेर भार क्यों बढ़ जाता ? यदि तू दुःखदायिनीही होती तो मरते समय ऋषि दयानन्दका मुख दिव्य आनन्दसे प्रफुल्लित क्यों देखा जाता ?

सचमुच हे मृत्यु ! तू डरावनी नहीं है। तू तो विश्राम-दायिनी और मुक्तिदायिनी है। तू काले भैंसेपर चढ़ी हुई भयानक कालदण्ड हाथमें लिये हुवे कोई रौद्र चीज़ नहीं है

तू तो मुझे एक रमणीक सुन्दर, वन्दनवारोंसे सजे हुये द्वारके रूपमें दीखती है, जिसमे कि श्रान्त तपस्वी विश्रामकी प्रफुल्लता पानेके लिये सुखसे प्रवेश करते हैं और जिसमें होकर चरम देहवाले मुनिगण मगलमय परम प्रभुके धाममे प्रवेश कर उसकी प्यारी गोदकी शरण पहुँचते है।

❀ ❀

सचमुच आजसे संसारके सब झूठे कष्ट 'इस जीव'की दृष्टिमें लुप्त हो गए। आज ज्यों ही समझा है कि पदार्थोंको दुःखप्रद बनानेवाला मेरा अंतःकरण है त्यों ही पृथ्वी तलकी सब कष्ट—कालिमायें धुल गईं और सुखकारी प्रकाश—सुधासे चारों दिशायें पुत गयीं। आजसे इस जीवन मन्दिरके आकाशमें कोई दुख छाया नही पड़ सकती। आजसे 'इस जीव'के अनन्त अविनाशी आनन्दमें जगतकी कोई भी वस्तु बाधा नही डाल सकती। आहा! सारा संसार आनन्दकी ज्योतिसे जगमगा रहा है। ओ३म् आनन्द! आनन्द! आनन्द!

प्रतिष्ठा

ऐ उच्च मार्गके पथिको ! सावधान । इस प्रतिष्ठा पिशाची-से सावधान । यह पाशिनी अपना पाश फैलाकर जगह जगहपर हमारे राहमें आकर बैठती है, उससे बच बचकर आगे पग धरना। यह अपने फन्देमें हाथ पैर बाँधकर सहजमें निचली भूमिपर पटक देगी ।

जब फूलोंका बरसना, अख़बारोंमें मोटे अक्षरोंमें नाम लिखा जाना, बड़े जन संघसे घिरे हुए उच्चासन पर बैठाया जाना आदि दृश्य उपस्थित हों तो जान लेना कि प्रतिष्ठाकी रपटन आगयी है, इस चिकने चमकतेसे स्थलपर सँभलकर पैर रखना कि कहीं फिसलकर औंधे मुँह गिरना न हो ।

❀ ❀

एक सन्तको जब सत्कारपूर्वक भोजन खिलाने ले जाने लगे तो उन्होंने अस्वीकार किया कि मुझे तो तिरस्कारसे मिला भोजन चाहिये । यह क्यों ? । मनु महाराजने ब्राह्मणके लिये अपमानामृतके पिपासु रहनेका क्यों आदेश किया है ? । "प्रतिष्ठा शूकरीविष्ठा" इत्यादि वचन किस लिये हैं ? । सच-

बात यह है कि इस (प्रतिष्ठा) सर्पिणीसे काटा मनुष्य बचता नहीं है। बहुतसे लोग जिनके नाश करनेके सब उपाय विफल हुये—कारावास और मौतका भय उन्हें न रोक सका, परंतु जब उन्हें सम्मानका हलाहल रस थपक २ कर प्रेमसे पिला दिया गया तो वे ऐसे सोये कि फिर कभी न उठ सके।

❀ ❀

मेरे बलके करतबोंको देखकर जो मेरी प्रशंसा करता है, क्या वह मेरी प्रशंसा करता है ?। हाँ ! उस शक्तिरूप प्रभुके सिवाय और किसकी स्तुति हो सकती है कि जिसके प्रदान किए सामर्थ्यके बिना संसारमें एक पत्ता भी नहीं हिल सकता।

जो मेरे सौन्दर्यपर मुग्ध हो ललित शब्दोंमे मेरी प्रशंसाके गीत गाता है वह मूर्ख नहीं जानता 'कि यह तो (मेरे और उसके) उस दिव्य कारीगरका स्तोत्र पाठ हो रहा है जिसने अपने सौन्दर्यसे इस ब्रह्माण्डोद्यानमे सुन्दरतम फूलोंको रंगा है।

और मेरे बुद्धिके चमत्कारोंकी जब कोई स्तुति करता है, हे स्वयं भास्वन् भगवन् ! उसे मैं अपनी स्तुति कैसे समझूँ ? मेरे वह सूर्य्य तो आप हैं जिससे फैलती हुई असंख्यातों किरणोंसे मै कुछ हमारे इन क्षुद्र मानवीय मस्तिष्कोंमें प्रतिबिम्बित होती है।

❀ ❀

मुझे यह क्या हो गया है ? इस मालकिनकी पुकार मुझे जहाँ सुन पड़ती है मैं उसके पालतू कुत्तेकी तरह वहीं जा

पहुँचता हूँ और पूंछ हिलाने लगता हूँ। इस प्रतिष्ठा-पिशाची-की उँगली जिधर उठती है उधर ही नाचने लगता हूँ। इसके बाजेकी खड़क कानमे पड़ते ही मेरे अंग फड़क उठते हैं, मैं खड़ा हो जाता हूँ और बेवस उधर ही खिंचा चला जाता हूँ, वह स्थान फिर देशके किसी भी कोनेमें क्यों न हो, गहनसे गहन स्थलपर क्यों न हो।

"आप बड़े महात्मा हैं" "आपके विना यह कौन कर सकता था" इन टेकोंके गीत जी चाहता है कि दिन और रात कानमें पड़ते रहें तभी मैं जीवित रह सकता हूँ। जो मुझे प्रणामकर जाते है या "धन्य हो महाराज" बोल जाते हैं मैं इस विस्तृत दुनियामें केवल उन्हें ही कुछ समझदार मान सकता हूँ। केवल ज़रा प्रशंसा कर दो, फिर चाहे मेरा सब कुछ लूट ले जाओ। मैं सच बताता हूँ कि मुझे "कामिनी और कांचन" की कुछ इच्छा नही है, परन्तु यह लोकैषणाका भूत है जो कि मुझपर पूरे बलसे सवार है। मैं इससे अब अवश्य छूटना चाहता हूँ किन्तु—इसके साज-सामान जहाँ दिखाई दे जाते है तो रहा नही जाता।

❀ ❀

आओ श्रद्धासे उन महर्षियोंको चरण-धूलि सिर माथे-पर चढ़ावें जिन्हें कि ऐसे तुच्छातितुच्छ प्रणामोंकी त्रिकालमे अपेक्षा नही; क्योंकि वे वे मनुष्य देव हैं जिनका हृदयाधिष्ठित परमदेव—जिनका विगल अन्तरात्मा—हरसमय उनके हरएक

कृत्यकी स्तुति करता है, फिर उन्हे क्या चिन्ता कि कोई और भी उन्हें पूँछता है कि नही। जब अन्दर उनकी स्तुतिका स्वर्गीय-गान निरन्तर हो रहा है तो क्या परवाह कि कोई (अन्यथा सिद्ध) शामिल बाजे उनकी प्रशंसामें बज रहे हैं कि नही।

वे उस अचल पदपर प्रतिष्ठित होते हैं कि यदि संसारके सब महाराजाधिराजे मिलकर उनके पैरों पर अपने मुकुट रखनेके लिए ढूँढते हुए हाथ जोड़कर सामने उपस्थित हों तो उनका कुछ सन्मान नही बढ़ता अथवा यदि संसारके सब सभ्य पुरुष उन्हे 'जंगली' कहें,या निन्दाका प्रस्ताव पास कर लें या कोई और हरकत करें तो उनका कुछ मान नहीं घटता।

वे अपने अन्तर्यामी देवसे अनवरत मिलनेवाली प्रतिष्ठा मे ऐसे मगन हैं कि उन्हें कुछ मालूम ही नही होता कि उनके सिरपर फूल बरस रहे हैं या जूते, पैरोंमें संपूर्ण जनता पडी है या बेडी, लोग धन्य धन्य पुकार रहे हैं या धिक् धिक्।

वे अपने विशाल हृदय—प्रासादके भीतर राजाओंके राजा के समान ऐसी परिपूर्णतामें विराजमान है कि कुछ अनुभव नहीं करते कि उनकी बाहिरी दीवारोंपर बच्चे कब कौनसा खेल खेल रहे हैं।

जब कभी ऐसे द्वन्द्वातीत महात्मासे एकबार साक्षात् हो जाता है तो समझमे आ जाता है कि अनमोल मोती समुद्रके अथाह तलोंमें क्यों छिपे पड़े हैं—जिन्हें संसारके किसी भी

मनुष्यसे द्वेष नहीं (किसी तरहके प्राणीसे भय नहीं) वे निर्जन प्रदेशोंमें क्यों भागे जाते है, जिन्हें बड़ी २ सिद्धियाँ प्राप्त हैं वे उन्हें दिखलाकर यश क्यों नहीं लूटते, फिरते, जहाँ कोई परिचित, सराहनेवाले, या बहुत सत्कार करनेवाले लोगोंके मिलनेकी आशंका होती है वहाँसे ये लोग क्यों बच २ कर अपना रास्ता तै करते हैं ?। सबका एक उत्तर है कि वे स्वयमेव इतने तृप्त हैं कि दूसरों द्वारा (ऊपरी) सन्मानके ठूंसे जाने से डरते हैं, क्योंकि हम (उन्हें अपने जैसा ख़ाली समझनेके कारण) सचमुच ऐसा ही करना चाहते हैं।

❀ ❀

जब तू ज़रासे सन्मानसे इतना हर्षाकुल हो जाता है तो इतनी जरासी निन्दाके होनेपर क्यों न कुम्हला जायगा। इस कुम्हलानेका मूल तेरी उस हर्षाकुलतामें है।

जब कोई तेरे नामके अन्तमें 'जी' नहीं लगाता या अभिवादन करना भूल जाता है तो तेरे सिरपर अपमानके घोर बादल मॅड़राने लगते हैं। और यदि सहभोजके निमन्त्रण पत्रमें तुझे भी याद कर लिया जाता है तो सारी दुनिया तुझे उस दिन उजली दिखायी देने लगती है और तू संसारमें अपनेको 'कुछ चीज़' समझने लगता है। ऐ मेरे मन! तू इतना क्षुद्र है। जब तू (बरसाती नदीकी तरह) जरासे पर-प्रसादसे भरपूर हो जाता है और स्वल्पसे अभावसे सूख जाता है तो मैं तुझ ऐसे तुच्छको साथ लेकर इस संसारमें क्या काम कर सकूँगा।

हे त्रिभुवन विधाता! मेरे हृदयको विशाल बना दे। हे कृष्ण भगवान् और महात्मा सुकरातके हृदयोंके बनानेवाले! मेरे हृदयको (समुद्रके समान) गम्भीर और 'अचलप्रतिष्ठ' बना दे जिससे कि प्रशंसाके रूपमें हज़ारों नदी नद इसमें आ आ करके गिरें किन्तु यह आपेसे बाहर न हो और सहस्रों निंदक रवि-किरणें अपनी पूरी तीक्ष्णतासे दिन भर काम करें किन्तु इसे ज़रा भी ताप न पहुँचा सकें। नहीं तो, हे प्रभो, ज़रासी बातसे बढ़ने घटनेवाले इस क्षुद्र हृदयको लेकर मैं इस तेरे बड़े भारी संसारमें किस काम आ सकूँगा।

❀ ❀

सम्मान वसन्तके आनेपर असली और नकलीका भेद खुल जाता है। नकली साधु इसे आया देखकर गर्वसे 'कांय कांय' करने लगते हैं किन्तु सच्चे सन्त अपनेको चारों दिशाओंमें फूलोंसे घिरा हुआ, मंद पवनसे वीज्यमान और ऊँचेपर बैठा हुआ पाकर गर्दन झुकाए मीठी वाणी बोल बोलकर हृदयकी कृतज्ञता प्रकाश करते हुये नहीं थकते।

इन नम्र महात्माओंको दिये गये प्रतिष्ठा और सम्मान उनपर क्षण भर भी नहीं ठहरते (पद्माकरके कमलपत्रपर पड़े जल-बिंदुके समान वे तुरंत अपने असली धाममें जा पहुँचते हैं) वे उसके चरणोंमें जा गिरते हैं जिसके चरणोंमें ये महात्मा स्वयं गिरे हुवे हैं। इन सम्मानोंसे वे महात्मा स्वयं बिल्कुल बेलाग, निर्लेप और अस्पृष्ट रहते हैं।

जिन्होंने प्रतिष्ठाको प्राणान्त डसनेवाली नागिनें बनते देखा है वे महान् आश्चर्यमें देखते हैं कि वे ही प्रतिष्ठायें इन सच्चे महात्माओंपर गलेमें उज्ज्वल पुष्पोंका हार और परिवेष्टित आभूषण वनकर कैसे उतर रही है। यह किसका जादू है? क्या यह महात्माओंकी करामात है? किन्तु महात्मा बताते हैं कि यदि इसमें कोई अलौकिक बात दीखती है तो यह केवल बेलाग रहनेकी बात है, यही जादू है, यही करामात है।

❀ ❀

पहिले जब मैं चुपचाप सुदूर ग्राममे दिनरात तेरी पूजा करता था, वह मेरे सौभाग्यके दिन मैं ही जानता हूँ। किन्तु जबसे झुंडके झुंड लोग दर्शन करने आने लगे और जगह २ बुलाया जाकर मैं सांसारिक स्वागत सत्कारोंमेंसे गुजरने लगा, तबसे तेरी यह पूजा विषम हो गयी है। वह आनन्द मारा गया है। जैसी तेरी इच्छा, यदि तूने मुझे यही काम अब सौंपा है। किन्तु मुझे तेरी शान्त उपासनाके वे दिन नहीं भूलते जब कि तेरे—केवल तेरे—यहांसे मुझपर प्रतिष्ठाओंकी दिव्य वृष्टि होती थी—अन्य कोई मुझे न जानता था और न सत्कारके रूपमें अपना मलिन जल मुझपर बरसाता था।

किन्तु इससे भी बहुत पहिले जब कि मुझे तेरे चरणोंकी कुछ ख़बर न थी एक दिन वह भी था जब मैं एक छोटी सी सभाके सभापतिकी कुर्सीपर बैठनेके लिये ऐसे जा रहा था जैसे कि कोई दस दिनका भूखा एक रोटीके टुकड़ेको पड़ा

पाकर आतुरतासे लपकता है। अहो उद्धारक! तेरी लीला!!

❀ ❀

जब मै किसी आदमीको देखता हूँ जो कि केवल अपनी कोई त्रुटि बतानेवाला न मिलनेके कारण घमंडमें अकडकर चल रहा है, तो देखकर बड़ा तरस आता है और जी दुखता है। मुँहसे अपने लिये यही प्रार्थना निकलती है "हे विधाता, मुझे चाहे सदा किसी जंगलमे रखना किन्तु कभी चाटूकारोंके बाड़ेमें घड़ीभर भी न घिरा रखना। यदि दौर्भाग्यसे मेरे गुण और दोष दोनों बतानेवाले सच्चे समालोचक न मिल सकें तो मुझे घोर निन्दकोंके बीचमें वास देना, किन्तु करुणाकर उस भयंकर स्थानमें कभी जगह न देना जहां पर सब प्रश्नोंका उत्तर 'जी हां' 'ठीक है' मे ही मिलता है, जहां पर ऐसा सेन्सर (censor) का प्रबन्ध है कि सिवाय 'वाढं' 'वाढं' के और किसी भी प्रकारका समाचार लानेवाली हवा तक मुझे न पहुँच सके।"

जहाँ मेरे केवल काले पार्श्वपर प्रकाश पड़ता है वहां मेरा सब कालापन धीरे २ उड़ जायगा और ठीक उसी तरह जहाँ केवल सफेद पार्श्व खुला रहता है, वहां मेरी सब धवलिमा नष्ट हो जायगी और मैं पूर्ण काला रह जाऊँगा, यद्यपि जीमें मैं अपनेको सफेद समझता रहूँगा। ऐसे निरंतर धोखेमें रहना कितना भयंकर है। इस धोखेसे जब एकदम आँख खुलती है तो अपनी दशा देखकर सिवाय आत्मघात करनेके और कुछ नहीं बन पड़ता।

मेरा शरीर पहिले ही निर्बल है, फिर यदि मैं हमेशा 'वाह वाह' को नमी आब हवामें रहूँगा और निन्दाके झोकोंसे कभी जलवायु परिवर्तन न होता रहेगा तो बताओ मेरे अंग-गल न जायँगे तो क्या होगा।

❀ ❀

तब कितनी आश्चर्य्यकारक बात होती है जब हम उनसे अपनी प्रशंसा चाहते हैं जिन्हें कि हम अच्छी तरह जानते हैं कि वे अज्ञानी और मूर्ख हैं। प्रशंसाके लालचमें यह भी नहीं देखते कि हमें क्या चीज़ मिल रही है। मूर्खोंकी दी हुई प्रतिष्ठाका क्या मूल्य है? जो विचारा उस बातको समझ ही नहीं सकता वह हमारी क्या प्रशंसा करेगा और क्या निन्दा करेगा। अज्ञानी और स्वार्थी पुरुष जिस समय निन्दा, अपवाद फैलाने लगते हैं तब ज्ञानी लोग तो इसे बड़ा भारी शकुन समझते हैं।

हे प्रतिष्ठे! तुम्हारा भी संसारमें कोई उचित स्थान है। यह वहां हैं जिस मौके पर अनुभवी वृद्ध पुरुष प्रसन्न होकर हमारे सिरपर हाथ फेरते हैं, या सज्जन मण्डल अपनी सराहनाका प्रेम प्रदान करते हैं—जब कि इन आप्त पुरुषोंसे आदरकी इच्छा और निरादरका भय हमे उत्साहपूर्वक सदा सन्मार्गपर रक्खे रखते हैं। यही अवस्था है जब कि हमें अपने विकासके लिए परदत्त प्रतिष्ठाकी ज़रूरत है—जब कि बाल पौधेकी अवस्थामें इस जलसेकके समय २ पर दिये जानेकी जरूरत है।

"थोड़ासा"

रोगमें ग्रस्त बालक शय्यापर पड़ा है। वह कहता है "नहीं अम्मा! आज तो वैद्य जी मुझे भोजनके लिये विशेष तौरसे मना कर गये हैं। वे कह गये हैं कि कुछ भी खाना बहुत हानि कर जायगा।" किन्तु पास खड़ी अम्मा भोजन भरी थाली हाथमें लिये कह रही है "नहीं वेटा **थोड़ासा** तो खा ले, और कुछ नहीं खाता तो ले यह **थोड़ीसी** खीर खा ले। हाय, बच्चा क्या दिन भर भूखा रहेगा?"

एक बिचित्र सी अवस्था आ पड़नेपर सत्यव्रती कह रहा है 'नहीं भाइयो! सत्यका महाव्रत पालन करनेकी वह महिमा तुम कुछ नहीं जानते हो; मैं और क्या कहूँ।' किन्तु अन्य सब लोग कहते हैं "**थोड़ासा** एक बार झूठ बोलनेमे भला क्या हरज है, एक बार तो धर्मराज युधिष्ठिरने भी झूठ बोल दिया था। **थोड़ा सा** झूठ न बोलनेसे यह सब बना बनाया काम बिगाड़ जायगा।"

बड़े प्रलोभनका समय है जब कि यती कह रहा है "भाग जाओ, तुम्हारा मेरे सामने कुछ काम नहीं है। क्या तुम्हें मालूम नहीं कि मैं कौन हूँ।" किन्तु चारों तरफ डोलती

फिरती हुई, मोहनी मूरतें अपनी चेष्टाओं द्वारा कह रही हैं "अरे थोड़ासा बस आनन्द एक बार लेकर देख। फिर चाहे छोड़ देना। थोड़ासा, केवल थोड़ासा।"

प्रकृति देवीकी गोदमें पला हुआ एक युवक इस बाज़ारी दुनियामें नया नया आया है। स्थान स्थानपर उसे 'अप टु डेट' सभ्य मिलते हैं और कहते हैं "अजी थोड़ासा मांस अवश्य खाना चाहिये। इससे जिस्ममें ताक़त बढ़ती है। नुकसान तो बहुत खानेसे होता है।" "यार शराबका थोड़ासा सेवन तो करना चाहिये। इससे चित्त सदा प्रसन्न रहता है। इसका थोड़ासा सेवन तो साहब लोग भी भोजनके साथ करते है।" "नही जी, थोड़ासा मसाला, चटनी, चूर्ण आदि खाना तो आवश्यक है। डाक्टर लोग भी ऐसा ही कहते है। इनके बिना भोजन पच ही नही सकता।" "केवल भोजनके बाद धूम्रपान (सिगरेट, बीड़ी या हुक्का,) बड़ा उपयोगी है। सारा दिन पीनेको कौन कहता है, थोड़ासा भोजनके बाद।"

❀ ❀

बिच्छू कहता है कि मुझे केवल थोड़ासा— केवल अपने पतले डंककी नोक भर धरनेको—स्थान अपने शरीरमें देदो। बस, शेष सारे शरीरको मैं कुछ नहीं कहता।

आग लगानेवाला कहता है कि थोड़ीसी केवल एक

चिंगारी अपने छप्परके एक कोनेमें लगाने दो, मैं और कुछ नहीं मांगता।

पाप भाव कहता है कि मुझे अपने हृदयमें थोड़ासा स्थान दे दो—मैं वहां कोनेमें एक तरफ़ चुपचाप बैठा रहूँगा, कभी कुछ करूँगा नही।

चतुर शासक कहता है कि तुम थोड़ासा केवल एक पैसा भर अपनी अमुक वस्तुपर 'कर' लगा लेने दो, अधिक कुछ नहीं।

विदेशी व्यापारी आकर कहते हैं कि तुम अपने विस्तृत देशके एक किनारेपर थोड़ीसी भूमि हमें दे दो—केवल एक कोठी बनाने लायक जगह।

वामनावतार उतरते हैं और कहते है कि 'हे महादानी बलि राजा! तुम मुझे केवल साढ़े तोन पग धरने लायक थोड़ीसी भूमि दान कर दो बस मैं और कुछ नही मांगता।

❀ ❀

मैंने आज ऐसी चीज़ें न खानेका व्रत किया था किन्तु अमुक आदमी यह खोयेका लड्डु रख गया है। अच्छा इसे न खाऊगा, छोड़ दूगा · · ····"किन्तु जब वह दे गया है तो इसे बिलकुल न खाना तो उचित नही। इसलिये थो-ड़ा-सा खालूं, इतना तो करना चाहिये।" वह थोड़ासा खा लिया गया। थोड़ीही देर बाद इसके दूसरी तरफसे आँख मीचे हुए एक गस्सा और भर लिया। अब इसे फिर उठा कर दो उँगलियोंमें पकड़े हुवे इधर उधर घुमाता हुआ, 'अब यह रह ही कितना

आया है' उस सबको एक ही ग्रासमें जल्दीसे गलेके नीचे उतार लिया—मानो कि यह जल्दीसे खा लेना न खानेके बराबर हो जायगा।

"मैंने शराब तो बहुत दिनोंसे छोड दी है, किन्तु आज यह सामने दूकान आगयी है, लाऊं तो थोड़ीसी—केवल एक छोटासा प्याला ....।" एक प्याला पी लिया। "दूकानवाले! ले फिर पाँच आनेकी और दे दे।" पाँच आनेकी भी पी डाली। 'अच्छा फिर जब पीनी है तो छक कर क्यों न पीलें।' जेबमें सब टटोलनेसे कुल पूंजी सवा चार रुपयेके पैसे निकले, वे सब दुकानदारके हवाले कर दिये और कई बोतलें खाली करके चल दिये।

'मुझे पेचिश हो रही है इसलिये यह इमलीका पना और चाट खानी तो नहीं चाहिये किन्तु थोड़ासा केवल खानी २ चावलोंमें डाल लेता हूँ'। थोड़ी देरमें पाँच चार चम्मच और डाल लिये और कुछ देरमें 'अब मैं जीऊँ या मरूं इसे तो खाऊंगा ही' ऐसा कहकर सारी कूँडी उठाकर पी डाली।

रात दो बजे घड़ीका अलारम बज रहा है क्योंकि बाबू साहबको ४ बजेकी गाड़ीसे कहीं जाना है और २ घंटे तय्यारीमें लगेंगे। उठकर 'ऐं दो तो बज गये। किन्तु अभी देर है थोड़ासा और सो लेवें। १५ मिनट बाद उठ जायंगे।' तीन बजेके लगभग फिर आँख खुली, 'गाड़ी तो ४ बजे आती है

और ४½ पर छूटती है थोड़ासा और सो लें। जल्दीसे सामान बांध लेंगे।' "ये तो पौने चार बज गये, अब उठकर जल्दी करनी चाहिये। किन्तु नींद क्यों खराब करें। अब दिनकी गाड़ीसे जायेंगे।" रोजके उठनेके समयपर भी जब कि ६½ बजे सूरजकी धूप आँखोंपर पड़ने लगी तब भी 'आज रात विघ्न होता रहा है' कहकर करवट बदल सो रहे और ठीक आठ बजे बाबू साहब आँखें मलते हुये चारपाईसे उतरे।

'यह बड़ा दुर्जन है। गुरुजीने इससे मिलनेसे रोका था। किन्तु कभी २ थोड़ीसी बातचीत कर लेनेमें क्या हर्ज है।' कुछ दिनों बाद दिल कहता है कि 'जब मित्रता ही की है तो इनकी सभी बातोंमें थोड़ा थोड़ा सम्मिलित होना चाहिये, नहीं तो दोस्ती कैसी।' अब उनकी सभी बातोंमें सम्मिलित होने लगे। कई वर्षों बाद एक दिन मनमें विचार होरहा है "अपने यारको मैंने सभी इच्छायें पूरी की हैं तो एक यह क्यों रह जाय। अच्छा कल भाईको विष खिला दो दूंगा। यह आँखो-का काँटा दूर हो जाय तभी ठीक है। पकडे जानेपर फिर जो कुछ होगा देखा जायगा" अगले दिन अपने सहोदर भाईको भोजनमें संखिया खिला दिया।

❀ ❀

हर एक काम आदिमे 'थोड़ा सा' से ही प्रारम्भ होता है। प्रारम्भमें 'थोड़ीसी' उंगली पकड़ते पकड़ते ही पहुँचा पकड़ा जाता है और मनुष्य सर्वथा वशंगत हो जाता है।

वह आग जिसमें कि सारा नगर जल गया प्रारम्भमें 'थोड़ीसी' केवल एक चिंगारीके रूपमें थी।

वह व्रण जिसका कि विष सारे शरीरमें फैलकर प्राण चले गये प्रारम्भमें थोड़ीसी—एक ज़रासी फुंसीके रूपमें था।

वह आपसकी लड़ाई जिसके महायुद्धमें असंख्यों प्राणी नष्ट हुए और सम्पूर्ण संसारको धक्का पहुँचा, प्रारम्भमें थोड़ीसी केवल एक कटु वचनके रूपमें पैदा हुई थी।

उस वीर्य्य नाश करनेवालेने जो कि आज गले सड़े शरीर में पड़ा हुवा भयंकर आँखें दिखा रहा है और जिसे कि कुछ दिनोंकी दुनियाँमें नैराश्यके सिवा आज कुछ दिखाई नही देता प्रारम्भमें केवल एकवार थोड़ेसे काम विचारके रूपमे उधर मुँह उठाया था।

वह धोखा देनेवाला जो कि आज संसारमें किसीपर विश्वास नही कर सकता और जिसके लिये झूठ बोलना सचकी तरह बिल्कुल साधारण हो गया है प्रारम्भमें केवल एक बार ही थोड़ासा झूठ बोलकर दूसरेको धोखा दिया था।

वह विशूचिका रोग जिसमें कि बड़ा हृष्ट पुष्ट शरीर दो घण्टोंमें छटपटाकर ठंढा हो गया प्रारम्भमें थोड़ासा, दिखाई भी न देनेवाले क्षुद्रसे क्षुद्र कीटाणुके रूपमें था।

वह पाप-वृक्ष जो कि आज बड़े ऊँचे और दूर दूर तक

फैली हुई विशाल शाखाओंमें दृढ़ खड़ा है प्रारम्भमें थोड़ासा, केवल एक नन्हेंसे बीजके रूपमें था।

❀ ❀

छोटेसे छेदकी उपेक्षा करनेवालेको क्या मालूम था कि इस 'थोड़ेमें'से सम्पूर्ण जहाज़में पानी भर जायगा और इतना सामान तथा ये हज़ारों यात्री देखते २ समुद्रगर्भमें ग़र्क हो जायेंगे।

थोड़ीसी (केवल पाँच मिनिटकी) देर करनेवाले सेना-पतिको क्या मालूम था कि इससे उसके महाराजकी सदाके लिये पराजय हो जायगी और सारे संसारका इतिहास बदल जायगा।

माताको क्या मालूम था कि आज थोड़ीसी केवल एक पुस्तककी पाठशालासे चोरी कर लानेवाला उसका पूत एक दिन चोरीमें फाँसी चढ़ेगा और उसका कान भी काट ले जायगा।

अनजानको क्या मालूम था कि थोड़ीसी केवल रत्ती भर इस चीज़के पड़ जानेसे सारा कुँवा विषैला हो जायगा और जो इसका थोड़ासा भी पानी पीवेगा वह यमालयमें ही पहुँच-कर विश्राम लेगा।

ऊँची पहाड़ीपर सुखसे खड़े हुए प्राणीको क्या मालूम था कि पासकी बेरोंसे लदी झाड़ीपर मुँह मारनेके लिये थोड़ासा केवल एक पग नीचेकी तरफ उठानेमें वह खाईमें जा पड़ेगा और सब हड्डियाँ चकनाचूर हो जावेंगी।

❀ ❀

यह 'थोड़ासा' बहुत भयंकर वस्तु है। कभी इसको थोड़ा समझ उपेक्षा मत करना। केन्द्रसे च्युत होते ही–थोड़ा या बहुत—सारे मंडलसे सम्बन्ध बिगड़ जाता है। गुरुताकेन्द्र से अतिरिक्त किसी भी अन्य स्थानपर वस्तुको संभाला नहीं जा सकता, वह स्थान फिर वहाँसे थोड़ी दूर हो या बहुत। इसी प्रकार संसारके व्यापी नियमोंकी सत्य रेखाओंसे "थोड़ासा" भी हटनेसे जगतसे हमारा सम्बन्ध बिगड़ जाता है और हम उसकी महान रक्षासे तत्क्षण वंचित हो जाते है। अतः प्रश्न तो किसी कामके बिल्कुल ही न करने या कर डालने में है, थोड़ा करने या बहुत करनेमें नहीं। और फिर यदि सुईकी नोकसे एक बार "थोड़ासा" भी छिद्र बना दिया गया तो उससे निकलनेवाली धारा कुछ ही क्षणोंमें बढ़कर एक भयंकर प्रवाह बहानेवाले मार्गके रूपमें आ जाती है। थोड़ा कभी थोड़ा नही रह सकता। एक बार भी चस्का लग जानेपर फिर उसे कौन छोड़ सकता है। मार्ग चल निकलने पर उसे कौन रोक सकता है। एक बार धारामें पड़ जानेपर फिर कौन वापिस लौट सकता है। इसलिये विचारने और संभलनेका यदि कोई समय है तो तभी है जब कि प्रलोभन 'थोड़ासा, थोड़ा सा' कहता हुवा हमें गढ़ेमें डालनेके लिये पास आता है उस समय कमसे कम यह तो सोच लेना चाहिये कि जब मैं इस 'थोड़ेसे' को नही रोक सकता तो क्या बढ़ जानेपर रोकूँगा। अबके बाद यदि फिर कभी यह

'थोड़ा सा' आवे तो कड़कके गंभीर स्वरसे कह देना 'नहीं कभी नहीं, बिलकुल नहीं। क्या मैं इतना तुच्छ हूँ कि इस 'थोड़ा-सा' की बहकावटमें आ जाऊँगा। यह मेरे दृष्टिपातके भी योग्य नही है। मैं जिसमें महाशक्ति प्रवाहित हो रही है, अगाध, अटल हूँ। मैं इस थोड़ेसे से हिल जाऊँगा' यह थोड़ासा! ऐसा कहकर इसे अस्वीकार कर दो, लात मार दो, दूर फेंक दो।

❀ ❀

किन्तु महा आश्चर्य है कि प्रलोभनके ही समय यह 'थोड़ेसे' का सिद्धान्त क्यों याद आता है। अच्छे कामोंमें 'थोड़ासा, थोड़ा सा' क्यों नही किया जाता। थोड़ा २ रोज़ हम क्यों न सत्संग करे, थोड़ा २ पढ़नेमें प्रवृत हों .... इत्यादि। यहाँ भी थोड़ेसे को कभी तुच्छ मत समझना। एक २ धूलिकणसे हिमालयसे पहाड़ खड़े हुए हैं, एक २ बून्दसे महासागर भरे हैं। एक एक पलसे मिलकर यह अनन्तकाल बना है, एक २ परमाणुसे जुड़कर यह विश्वब्रह्माण्ड खड़ा है। एक एक सत्कर्मके पुष्पोंसे महात्माओंकी चरित्रमालाये गूँथी गयी है, एक एक पग ऊपर रखनेसे उच्चसे उच्च इन्द्रासन पहुँचे गये है। यही दिशा है जहाँ 'थोड़ासा' २ करके जितना बढ़ा जाय उतना ही थोड़ा है। यही इस 'थोड़ा सा' के सिद्धान्तका उचित प्रयोग है, जिसके करने २ सहजमें परम अभीष्ट प्राप्त किया जा सकता है।

हँसता हूँ

सब तरफ हंसी और प्रमोद का राज्य है, जिस चीज़ को देखता हूँ हंसता ही पाता हूँ। विशाल प्रकृति देवी अपने एक २ अंग से चहुँ ओर मुस्करा रही है। ऊपर आकाश, कभी श्यामभेघों से आवृत, कभी नील निर्मल, कभी तारों से जटित, अपनी छवि में आठों पहर शोभायमान है। भूतल पर दिगन्तों-तक हरे खेत लहरा रहे हैं, इधर पहाड़ उचक रहे हैं, उधर चमकीली नदियां उछलती कूदती दौड़ रही हैं। कहीं पक्षियों-के गीत, हिरणोंकी सायंकालिक छलांग और मोरोंके नाच हैं; और कहीं हरी पोशाक में सजे हुवे तरुगण अपने रंग बिरंगे फूलों से प्रफुल्लित मन्द हास्य कर रहे हैं। आहा! आनन्द खुशी और हंसी की तरंगोंमें, यह देखो, कैसे सारा संसार-समुद्र उमड़ रहा है। यह बृहत् हास्य-संमेलन न जाने किस अज्ञात कालसे हो रहा है।

समय था जब अपने बालकपनके दिनोंमें मुझे यह विशाल हास्य 'भयानक हंसी' प्रतीत हुवा करती थी और मैं समझता था कि ये सब चारों ओरके हंसनेवाले निरन्तर मुझपर ही हुला करते हैं. इसलिये तब मैं नीचे मुख किये सदैव उदास

और दुःखी बना रहता था। किन्तु "ये सब तो मुझे हँसानेके लिये ही हँस रहे हैं और मुझे भी इनके साथ मिलकर हँसना चाहिये" यह मंगल संदेश जबसे मुझे पहुँचा है तबसे मैं हँसता हूँ और तबसे हँसा ही करता हूँ।

❀ ❀

यह हमारा जगत् एक विचित्र, जीवित जाग्रत, महान् अद्भुतालय है जिसमें कि रखी हुई एक २ वस्तु एकसे एक अद्भुत और अतएव हास्योत्पादक है। मैं यहांकी किसी भी वस्तुको ध्यानसे जरा देरतक देखता हूँ तो कुछ देरमें हँसने लगता हूँ। यहां कहीं आनन्दोत्सव मनाया जारहा है तो कहीं रोना धोना मचा हुवा है, एक ओर योगनिद्रामें लीन होना दूसरी ओर अज्ञानकी घोर रात्रिमें चादर तान सोना, इधर शोर शराबा उधर श्मशानका सन्नाटा। यह सब अद्भुत खेल देखकर मैं दिनरात मनही मन खिलखिलाता रहता हूँ। इसमें कहीं सत्व बढ़ा हुआ है और लोगोंको ज्ञानप्रकाशमें ऊँचा २ उठा रहा है, कहीं रज लोगोंको बलात् बड़े २ कार्योंमे लगा रहा है उन्हें चैन भी नहीं लेने देता और कहीं तमका राज्य है तो लोग आलस्यके मारे हुवे मोहमें फँसे पड़े हैं। अहो, यह विश्वव्यापिनी लीला, बस देखने योग्य है। जो लोग व्याकुलतासे बड़ी २ साधनाओंमें लगे हुवे हैं जी चाहता है कि उन्हें हिला २ कर उठाकर खड़ा कर दूं और कह दूं "अरे देखो, इस

हास्यरसके विशाल नाटकको द्रष्टा बनकर देखो। तुम किस झंझटमें पड़े हो। इस लीलाको देखो और हंसो, बस यही मोक्षका सीधा उपाय है। क्या तुम्हें यह प्रत्यक्ष होता हुवा अद्भुत नाटक नहीं दिखायी देता? ज़रा एक तरफ खड़े होकर देखो द्रष्टा बनते ही तुरंत तुम्हारे लिए मोक्षके दर्वाजे खुल जांयगे और पहुँचनेके लिए पास पोर्ट (Pass Port) मिल जायगा। "उठो, देखो हंसो" यही हमारी साधना का मंत्र है"।

❀ ❀

सृष्टिके गहन रहस्योंको खूब सोचनेपर भी जब कुछ सूझ नहीं पड़ता तो न जाने क्या सोच मैं कहकहा मारकर हँसने लगता हूँ, जिस दिन कि प्रातःसे एक ही जगह बैठकर बड़े परिश्रमसे दिनभर कार्य्यव्यग्र रहता हूँ और शामको देखता हूँ कि चिन्ता भार रत्ती भर भी नहीं घटा सका हूँ तो विवश अपना कार्य्य समेट लेता हूँ और सब कुछ भुला हँस पड़ता हूँ। जब किसी आपत्तिके टालनेके सब उचित यत्न करनेपर भी देखता हूँ कि यह टलती नहीं है तो इसे आने देता हूँ और अपनी मुस्कराहटसे इसका स्वागत करता हूँ। संसारके सब कष्ट और कठिनाइयोंमे मेरा अन्तिम शरण यह 'हास्य' ही है।

इसी प्रकार मुझसे किये गये सब प्रश्नों और तर्कोंका अन्तिम और अमोघ उत्तर भी यही हंसी है। जिसे मैं अधिक समझा नहीं सकता वह जब कहता है कि 'तुम्हारे विचार दुनियासे निराले हैं' तो मैं मन ही मन हँसता हूँ। वह ज़ोरसे

कहता है कि 'बतलाओ कि तुम्हारी ये विचित्र बातें कैसे ठीक हैं' मैं आज्ञापालनके लिए हँसने लगता हूँ। यदि वह बलात् 'शास्त्रार्थ' (?) पर उतर आता है, तो मैं उसे और कैसे समझाऊँ?। ईश्वरकी कृपासे मैं निरुत्तर रह जाता हूँ और तब खूब जी खोलकर हँसता हूँ।

❀ ❀

वास्तवमें मैं सदैव हँसता हूँ। हे चारों तरफकी चीज़ो! जिस समय तुम मुझे हँसता न पाओ या दुःखी और उदासीन देखो तो यह न समझो कि मेरे अन्दरका हँसीका दीपक बुझ गया है। निःसंशय तुम यदि ज़रा इधर उधरसे झांककर देखोगे तो इसका प्रकाश तुम्हें ज़रूर मिलेगा। सच तो यह है कि बाहरके आपद् और कष्टोंकी आँधीके झोंकोंसे इस दीपकको बचानेके लिए ही मैं स्वयं इसे उस समय छिपा लिया करता हूँ—केवल ढक लेता हूँ। वास्तवमें मैं निरन्तर हँसता ही रहता हूँ।

यह सत्य है कि देर तक अन्यमनस्क रहनेसे इस दीपककी बत्ती कभी २ नीची हो जाया करती है परन्तु ध्यान आते ही मैं तुरन्त इसे ऊँचा कर लेता हूँ और एवं मेरा दीपक सदैव जलता ही रहता है। मेरी हंसी कभी बन्द नहीं होती।

❀ ❀

जिन अवसरोंपर दुनिया रोती पीटती है या हंसना छोड़ गंभीर चेहरा बनाये रखती है उस समय भी यद्यपि संसारके

वायुमंडलके दवावसे मेरी हंसी दवी होती है और चेहरा गंभीर वना होता है तो भी अन्दर ही अन्दर मेरे एक कोनेमें हंसी चलती रहती है। मेरा एक हिस्सा हंसा करता है जब कि लोग 'मेरी सारी जिन्दगीका कमाया धन नष्ट हो गया' 'या मेरा इकलौता जवान वेटा मर गया' ऐसा समाचार सुनाते हैं अथवा अत्याचारीके किन्हीं लोमहर्षण अत्याचारोंकी कथा करते हैं। मैं रोगीपर पंखा करता हुआ भी अपनी अन्दरकी एक गुफामें हंसता हूँ और जब 'राम नाम सत हैं' करती हुई प्रतिदिन अरथियाँ सामनेसे गुज़रती है तब भी अन्दर हंसता जाता हूं। और भी हंसी आने लगती है जब ध्यानमें लाता हूं कि मैं भी एक दिन ऐसे ही अरथीपर पड़ा हूंगा। हाँ, हाँ, अपनी मृत्युके सायंकालको भी मैं हंसना न भूल सकूंगा। मरनेके वाद भी मेरे दाँत निकले होंगे। नहीं नहीं, मेरी तो चिता भी अंत समयमें एक विकट हास्य हंसेगी जिससे कि छोटे २ हंसीके फूल झड़ेंगे जिन्हें कि चुननेके लिये लोग, कभी यदि चाहेंगे तो, मेरी राख ढूंढेंगे।

❀ ❀

इस सर्वव्यापी हास्यके स्रोत! हे सबको हंसानेवाले! हे आनन्दमय! तेरे अनगिनत दानोंमेंसे मैंने आज इस एक हंसीके दानको पहचाना है और अपनाया है। हे दाता! इससे मुझे कभी वियुक्त न करना। मुझे अयोग्य देख चाहें अन्य सब दान भले ही मुझसे छीन लेना परन्तु हे करुणा-

निधान! इस हंसीके दानको तो अपने स्मृतिचिन्हके तौर पर ही सही, इस गरीव दासके पास रहने देना और अपराधोंके दण्डमें मुझसे सब सामर्थ्य हरण कर लेनेपर भी इतनी—केवल इतनी—सामर्थ्य छोड़ देना कि जिससे आपकी दी हुई इस हसीको सदा प्रकट कर सकूं, जिससे अपने पापों और अधर्मोंके वदले आई हुई आपदाओं और क्लेशोंमें मैं मुस्कुरा सकू—इस तेरी भेंट द्वारा उन्हे पवित्र कर सकूं—इस तेरे उपहार पुष्पके संसर्गसे अपने सारे कंटीले रास्तेको सुरभित कर सकूं। यही नाथ! एक प्रार्थना है। इस लोकमें परलोकमें, जवानीमें या वुढापेमें, वर्षामें या ग्रीष्ममें, दिनमे या रातमें, सदैव ही यह तेरा उपहार-पुष्प इस तुच्छ पौधेपर विकसित रहे, कभी भी म्लान न हो। हे प्रभो! कभी भी म्लान न हो।

सन्ध्या

अब मेरे चौकेमें कोई न आवे। अब मैं सब कूड़ा करकट निकाल कर साफ चौका लगाकर आत्मिक भोजन पकानेके लिये बैठा हूँ।

यही निश्चय करके मैं प्रतिदिन सायं प्रातः जब आत्मिक भूख लगती है, चौका लगाकर पवित्रतासे रसोई करना शुरू करता हूँ। परन्तु मेरे यार दोस्त ऐसे बेतकल्लुफ (दोस्तोंको इससे ज्यादा और क्या कहूँ) हो गये हैं कि मुझे अपना भोजन भी नहीं करने देते। जिन किन्ही से दिन भरमें या रातमें जरा क्षणिक भी परिचय हो गया होता है वे निःशंक बेखटके मेरे चौकेमें चले आते है और मुझसे बातें करने लगते हैं। और मैं भी ऐसा रसिक (अपनेको 'निर्लज्ज' कहते तो लज्जा आती है) हूँ कि मुझे कुछ खबर तक नहीं रहती। कभी कभी तो मिन्टों तक दोस्तोंसे गप्पें उड़ती रहती हैं। एकदम जब ख़्याल आता है तो चिल्ला उठता हूँ "हायरे! यह तो मेरा चौका छूत हो गया। निकलो, यहाँसे भागो! मैं तो भोजनके लिये बैठा था"। सबको हटाकर फिरसे चौका देता हूँ और फिरसे भोजन बनाने बैठता हूँ। किन्तु फिर भी वही हाल है।

भला दिन भरके साथी इस समयके लिये कैसे हट जाँय। फिर फिर चौका छूत होता है और मै फिर फिर शुरुसे चूल्हा सुलगाता और दाल चढ़ाता रहता हूँ। बड़ा हैरान हूँ। क्या करूँ? बहुत देर हो जाती है। क्या दिन भर यही करता रहूँ? इतना तो धीरज नही है। या यह भोजन ही न खाऊँ? यह भी इच्छा नही है। अन्तमें तंग आकर छूत, जूठा जैसा भी कच्चा पक्का खाना होता है, खालेता हूँ और छुटकारा पाता हूँ। पर इस दूषित भोजनसे क्या लाभ होना है? यही कारण है कि मेरी आत्मिक पुष्टि नही होने पाती। प्रतिदिन दोनों संध्या वेलाओंमें भोजन खाता जाता हूँ तो भी दुबलाका दुबला ही हूँ।

❀ ❀

एक नदी है जिसे सब यात्रियोंने कभी न कभी पार करना है। बहुतसे लोग इस नदीके तटपर वर्षोसे आये बैठे हैं–बहुत आ रहे है, कोई दूर है, कोई समीप पहुँच चला है–ऐसे भी बहुत है जिन्हें खबर नही कि हमने कभी इस नदीको पार भी करना है, परन्तु ये सब इस बातमे समान है कि कोई भी पार हुत नही। सब इसी पार है।

तटवर्ती लोग दूर तक पानीमे जाते है और घबराकर लौट आते है। बड़े २ यत्न करते है–नई २ तदबीरें पार होनेके लिये सोचते हैं। इधरसे जाकर देखते है, कभी उधरसे जाते है। परन्तु जब तक पार नही हो जाते तब तक कुछ नही। वे

वहीं है जो अन्य है। उनमें कोई सच्ची महत्ता नहीं, कोई वैशिष्ट्य नही।

यह कौन सी नदी है? यह वह नदी है जो कि व्युत्थानता के राज्यकी सीमा है और जिसके कि पार एकाग्रता और निरोधकी पुण्य भूमिका विस्तार प्रारम्भ होता है, जिसपर कि प्रसिद्ध, धारणा ध्यान और समाधि नामक उत्तरोत्तर प्रकाश-मान साम्राज्य है और जहाँ पर बने हुये विभूतियोंके दिव्य-भवन कई यात्रियोंको इसी किनारेसे दीखने लगते हैं। यह वह नदी है कि जिसके पार लंघे हुए मनुष्यको अपने आत्मिक भोजन बनानेमें ये 'यार दोस्त' विघ्न नहीं डाल सकते और इसलिये वह वहाँ निर्विघ्न आत्मिक पुष्टि प्राप्त कर सकता है।

❀ ❀

तो इस नदीके पार कैसे जाँय? यह तो स्पष्ट है जिस यात्री पर संसारके नाना विषयोंसे बँधा हुवा 'राग' रूपी बोझ लदा हुवा है वह तो इस नदीको पार नही कर सकता। वह डूब जायगा, पर पार नही पहुँचेगा। इसलिये पहिले तो इस 'राग' के बड़े भारी बोझेको उतारकर हलका वैरागी बनना होगा। फिर जो वैरागी है वह किसी न किसी तरह बार २ यत्न (अभ्यास) करता हुआ इसे तर ही जायगा। जिसने सच-मुच इस पारकी वस्तुओंका राग छोड़ दिया है उसे तो उस पारका प्रबल आकर्षण ही खीचने लगता है। वह पार क्यों न होगा।

हाँ, कोई वैरागी पूछ सकता है कि 'बार बार यत्न' किस प्रकारका करना चाहिये। इसपर सन्त लोग बतलाते हैं कि:-

(१) कोई तो निरन्तर निरवच्छिन्न जप-रूपी पुल परसे उसपार पहुँच जाते हैं। ये लोग प्रणव या किसी अन्य जपको करते हैं।

(२) कोई ज्ञानी भक्त अपनी विचार-सिद्धि द्वारा इस नदी परसे ऐसे गुज़र जाते है कि उन्हें पता ही नहीं लगता कि हमने कोई नदी पार की है। ये लोग प्रारंभमें मनको कहते हैं 'अरे चंचल मन ! तू जा, कहाँ जाता है। तू जहाँ भी जायगा वहीं वे ही भगवान ही तो हैं।' इस प्रकार उनका मन हर एक वस्तुमें भगवानको ही देखनेसे एक ही रंगमें रंग जाता है।

(३) दूसरे कोई भक्त अपना सब कुछ समर्पण करते हुवे मनःसमर्पण रूपी विमान द्वारा ऊपर ही से पार हो जाते हैं ! जब सचमुच मन अपना नहीं रहता, भगवानका हो जाता है तो वह और किसका चिन्तन करे वह स्वयं निरुद्ध हो जाता है।

[४] कोई प्राणके अनुसार चलनेवाले 'सोहं' भावनाकी युक्तिसे ऐसे ठीक घाट उतर जाते हैं कि इन्हें वहाँ जलका कुछ भी कष्ट नहीं होता, बल्कि जलधारा सहायक होती है। ये लोग सतत चलनेवाले प्राणमें निरन्तर मन द्वारा सोहं या ॐ का श्रवण करते हैं।

[५] कोई इच्छाशक्ति वाले अपनी प्रबल इच्छाकी बाहुओंसे इसे तर कर पार कर जाते हैं।

[६] इनके अतिरिक्त गुरुपदेशसे प्राप्तव्य बहुतसी नौकाये, डोगियें आदि भी है जो कि वैरागिओंको पार ले जाती हैं।

इसप्रकारके उपाय तो सैकड़ों हैं जिनसे कि इस नदीके पार पहुँचा जा सकता है। आओ हम भी किसी न किसी उपायसे इस नदीसे पार उतरजायँ और निर्विघ्न आत्मिक पुष्टि प्राप्त करें।

उद्बोधन

उठो, राजपुत्र! वन्दिगण तुमे मंगल गीतों से जगा रहे हैं। स्वप्न छोड़ जागृत में आओ और अपनी राजपुत्रता अनुभव करो। इस विशाल साम्राज्यके स्वत्वधारी राजपुत्र! उठो, वन्दीगण खड़े तुम्हारे स्तुति गीत गा रहे हैं।

सेना नायक! क्यों नैराश्य-ग्रस्त पड़े हुवे हो? यह देखो सब शिथिल बिखरी पड़ी हुई दिव्यशस्त्रों वाली अनन्त सेना तुम्हारी ही है। उठो और खड़े हो कर एक वार अपना रणशंख बजादो (सुनादो) कि ये दिग्विजयिनी सेनाये सन्नद्ध होकर भुवनों को कंपाती हुई आकाश पाताल को एक करती हुई तुम्हारी आज्ञा में खड़ी होजांय।

देवाधिराज! उठो, जागो, दृष्टि उठाकर देखो कि ये सब तैंतीस करोड़ देव तुम्हारे चारों तरफ आज्ञा पानेके लिये हाथ बांधे खड़े हैं। इन्हें अपने आदेश सुना सुना कर अनुगृहीत करो-कृतार्थ करनेकी कृपा करो।

हे पुरुष! उठो चारों तरफ दिखाई देनेवाली प्रकृति-यह विश्वरूपा और अनन्ता प्रकृति-तुम्हारे ही लिये अनादिकाल से

प्रवृत्त हो रही है। इसे अपना कुछ भी नहीं सिद्ध करना है; यह जो भी कुछ है सो सर्वथा तुम्हारे ही लिये है। पुरुष! उठो इसे जानो और अपना पुरुषार्थ लाभ करो।

❀ ❀

हे शरीरी! तू तो पवित्र आत्मा है। उठ, इस पाप कीचड़ से ऊपर उठ। तू निर्लेप है तेरे पास पापका क्या काम, पाप तुझे स्पर्श भी नही कर सकता। उठ, विशुद्ध आत्मा! ऊपर उठ।

हे मनुष्य! तू यहां विषय भोगों में कहां फंसा पड़ा है। तू दिव्य अपवर्गका अधिकारी, वैराग्य के पवित्र मार्ग द्वारा ब्रह्मानन्द के पहुंचनेके अधिकारी! तू क्या इस दशा में पड़नेके लायक है। उठ, तू मनुष्य है-पशुओं की असंख्यों भोग योनिओसे ऊपर उठकर इस मननशील योनिको प्राप्त हुवा है।

हे जीव! तू हारा हुवा क्यों पड़ा है। तुझ में तो ससारकी अनन्तशक्ति प्रवाहित होरही है। तेरे मस्तिष्कमें ज्ञानका सूर्य चमक रहा है। तेरे हृदयमें स्वयं भगवान् बस रहे हैं। तू क्या नहीं कर सकता, उठ।

❀ ❀

ऐ मौतके मारे हुवे! ज़रा आंख खोलकर देख कि यहाँ मौत कहाँ है। तू अमृतपुत्र, जगत्की सारिष्ठ सत्ता, तू अनादि कालसे कब मरा है या मर सकता है।

ऐ दुःख क्लेशोंके आठों पहर सताये हुवे! अब उठकर खड़ा होजा और आंख उठाकर चारों तरफ खुल कर देख कि

जो दुःख दिखाई देरहे थे वे अब क्या हैं । अरे, यह तो भगवानका जगत है जो कि 'आनन्दसे उत्पन्न होता है आनन्द में स्थित है और आनन्दमें ही लीन होता है'। यहां दुःखका कहां स्थान है ? ।

ऐ घोर अन्धकारसे पीड़ित जिसे कि इस भयंकर तिमिरमें कुछ भी सुझाई नही देता ! ज़रा उठकर एक वार अपने बन्द किवाड़ोंको खोल और फिर देख सारा ब्रह्माण्ड स्वयंज्योति सूर्यकी भासमान किरणोंसे चकाचौंध हो रहा है कि नहीं ।

ऐ नानाविध भयोंसे त्रासित ! तू क्यो हर समय क्षण २ में अनिष्टाशंकासे संकुचित हुवा रहता है । एकवार उठकर क्यों नही देख लेता कि इस घरमें सब अपना ही अपना है, यहां भय कैसा ? यहां तो त्रिकालमें भी किसीका अकल्याण कैसे हो सकता है ? फिर तू इस परम कल्याणमय शासनमें क्यों नहीं छाती निकाल कर निर्भय होकर फिरता ।

ऐ असंख्यो चिंताओंके भारसे व्याकुल ! तुझे यह भार लादने को किसने कहा है ! उठ, उस अपने सर्व रक्षक सर्व चिन्तकके सर्वधारक कन्धो पर इन्हें परमश्रद्धासे अर्पित कर निश्चिन्त क्यों नहीं हो जाता। अरे मूर्ख ! जिसकी सर्वशक्तिमती माता हर समय जाग रही है उसे कैसी फिकर, किसकी चिन्ता । क्यों नहीं, उसकी गोदमें बेफिकरीमें मस्ताना होकर लोटता फिरता ?

❀ ❀

महापुरुष ! तुम यहां साधारण पुरुषोंकी भांती कहां घूम रहे हो। सब दुःखित पापमग्न संसार तुम्हारे चरणार्पणकी प्रतीक्षा कर रहा है। तुम जानते नही कि तुम्हें क्या बनना है–अपनी भावी ऐतिहासिक महत्ताका तुम्हें कुछ ज्ञान नही। जो कार्य तुम्हारा है उसे संसारमें और कोई नहीं कर सकता।

हे कर्मवीर ! उठो, तुम्हारे लिये संसारका कार्यक्षेत्र खुला पडा है। तुम जिस छोटेसे भी कामको हाथमें लोगे तुम्हारे स्पर्शसे वही महत्वपूर्ण बन जायगा। तुम दीनोंके उद्धार [धर्मसंस्थापन] के लिये आये हो। तुममें महान् शक्ति निहित है, किन्तु पवनसुतको मालूम नही कि वह इस पारावारको लांघ सकता है। उठो, लोक· तुम्हारी घोर आवश्यकता अनुभव कर रहा है। भारतभूमि-रजोजात ऋषिसंतान ! उठो जागो, समस्त संसार तुम्हारे जागने और इस पुण्यभूमिसे ज्योति प्राप्त करनेकी प्रतीक्षामें है। सूर्य ! उदित होओ, अपनी तमो-भेदक किरणोंका विकास करो। उठो, तुमसे जगत्का भारी कल्याण होने वाला है।

यह कौन जंगलमें लात पर लात धरे मस्त सोया पडा है। अरे तेरे तो सब लक्षण चक्रवर्त्ती केसे हैं। उठ, तू यहां कहां ?, तू तो देशों पर शासन करनेके लिये पैदा हुआ है। प्रसुप्त पंचानन ! उठो, देखो कि पांचो दिशायें तुम्हारे प्रतापसे व्याप्त हो रही हैं। सब जंगलके अधिपति ! अपनी तेजःशाली विशाल आंखोंको खोलो। महाराज ! जागो वन्दीगण खड़े जगाते हैं।

———

'भयंकर अग्निकांड'

'वहाँ आग लग रही है आग लग रही है, चलो दौडो! बुझानेवालोंकी सख्त ज़रूरत है'। ऐसा शोर करते हुवे कुछ लोग आये। मैं भी उनकी तरह आग बुझानेवालोंका वेष भर कर उनके साथ हो लिया। साथ रहनेवाले अपने पड़ोसी—जो कि एक निराला आदमी था—से भी मैंने कहा कि 'चलो यार, कहीं परोपकार करने चले। आज हम अमुक लोगोंमें अमुक स्थानपर परोपकार करने जा रहे हैं।" किन्तु उसका वही हमेशा जैसा उत्तर पाया और मैंने झुंझलाकर उसे दो चार उलटी सीधी सुनाईं थीं कि वह और कहने लगा 'भाई तुम क्रुद्ध क्यों होते हो, क्या नही देखते कि मेरे तो स्वयं आग लग रही है। मैं औरोंकी आग क्या बुझाऊँगा।' ये लोग ऐसे ही पागलपनकी बातें कहा करते हैं। इसलिए मैंने मुँह फेर लिया और आगे चल दिया। किन्तु वह कहता ही गया। 'अरे तेरे भी ज़ोरकी आग लग रही है। जाकर अपनी आग बुझा। तुम तो अपनी आगसे उलटे न जाने कितनोंको जला आओगे।'

राहमें और भी कई इसी श्रेणीके लोग मिले। एक ने तो [जो कि बहुत उतावला मालूम होता था] हमें सचमुच आगमें जलता समझ कर दो चार उपदेशके भरे घड़े हम पर उलटा दिए किन्तु हम अपना काम बना कर ही घर लौटे और यही समाचार लाकर सुनाया कि 'आग बुझो आए'। यह सुनते ही 'निराला आदमी' फिर अपने घरसे बोल उठा 'सचमुच आग' अपनी था किसी और की ?

इस ढंगसे अपने स्वार्थ साधन करनेके काममें मैं इस प्रकार बहुत बार सम्मिलित हुआ। किन्तु अन्तमें कष्ट पाकर एक दिन आँखें खुल गयी। आग सचमुच दिखाई देने लगी अपने लगी हुई आग दीखने लगी। ईश्वरकी कृपा हुई। अपने लगी हुई इस भारी आगको बुझानेके लिये बड़ी घबराहट पैदा हुई। यह भी स्पष्ट हो गया कि वह दूसरोंकी आग बुझानेका बहाना करना सचमुच अपनी ही एक आगकी क्षणिक शांति करनेका एक टेढ़ा उपाय है।

उस दिनसे मैं निरंतर अपनी अग्निके शमनमें लगा रहता हूँ। यदि समीपमें कोई मुझसे भी अधिक आगमें जलता दिखाई देता है और मैं उसकी शांतिके लिये कुछ कर सकता हूँ तो अपना काम छोड़कर उसका भी जो कुछ बन पड़ता है अवश्य कर देता हूँ। नहीं तो हर समय दिन और रात अपने अग्नि शमनमें ही लगा रहता हूँ।

❀ ❀

ओह! संसार में ऐसे भी लोग हैं जिन्हें आग लग रही है किन्तु उसकी उन्हें कुछ भी ख़बर नहीं। जिन्हें अपनी आगका ज्ञान हो गया है वे तो अग्निकाण्ड सूचक घंटे बजाकर सहायता के लिये दूसरोंको बुलाते है या स्वयं उनके पास शरण पानेको जाते हैं अथवा अन्य कोई आग बुझानेका उपाय करते हैं। किन्तु उन शोचनीयताकी पराकाष्ठाको प्राप्त पुरुषोंकी क्या गति होती होगी जो कि आगमें फुँके जा रहे हैं किन्तु उन्हें इसका कुछ भी मालूम नहीं। उलटे वे औरोंकी आग बुझाते इधर उधर घूमते फिरते हैं।

सचमुच इस संसारमें आकर सबसे पहले हमें यही जानना है कि हमें आग लग रही है। भगवान बुद्धकी घोर तपस्याओं से प्राप्त चार महासत्योंमें पहिला सत्य यही है कि संसार आग से जल रहा है। मुनिराज पतंजलिने अपने योगशास्त्रके साधन पादमें यही सत्य बताया है कि विवेकी पुरुषके लिये संसारकी सभी वस्तुयें आग बनकर संतापदायिनी हो जाती हैं। सन्त कबीर अन्य मनुष्योंसे ऊपर खड़े होकर जगमे यही दृश्य देखते हैं और वर्णन करते हैं 'ई जग जरते देखिया, सब अपनी अपनी आगि"।

❀ ❀

'ऐसा कोई न मिला जासों रहिये लागि' इस संसार व्यापी आग में जलते हुवे लोग ठंडक पानेकी मृगतृष्णामें जहां तहां तड़पते फिरते हैं। कोई स्त्री को ठंडक पहुंचाने वाली समझ

उसे जा लिपटता है। कोई प्यारे बालबच्चोंको छातीसे लगा अपना कलेजा ठंडा करना चाहता है। कोई अन्य भाई वन्धु मित्रोंको सदा चिपटा रह कर शीतलता पाना चाहता है। और कोई शान्ति पानेके लिये साधू फकीरों तथा अन्य ऐसे लोगोंकी शरण ढूँढ़ता फिरता है। किन्तु एक क्षणके बाद मालूम हो जाता है 'अरे ये भी वैसे ही जल रहे हैं—अपनी २ आगमे वैसे ही तप रहे हैं।' ऐसा कोई नही मिलता जिससे जाकर लग रहें—जिसे लगे रहकर चार क्षणके लियेभी कुछ ठंडक पड़ जाय।

इस जलते हुवे संसारमें बालक समझता है कि जब वह युवा (विवाह योग्य) हो जायगा तो उसकी यह सब आग बुझ जायगी। जो तीसरी श्रेणीमें पढ़ता है वह दशम श्रेणी उत्तीर्ण होनेपर अपने सब संतापोंसे छुटकारा समझता है। जो ग्राममें रहता है वह शहरके निवासके लिये उद्विग्नतासे लालायित है, मानो कि वहांके वर्फपड़े शरबत तथा मलाईके वर्फ आदिका प्रयोग उसकी सब कलेजेकी आग बुझा देगा। जो अपने गार्हस्थ्यके मकानमें पड़ा तप रहा है वह गंगाके शीतल तट-या हिमालयसे ठंडे पहाड़ोंकी तरफ बड़ी ही आशभरी निगाहोंसे देखता हुवा एक दिन वहां पहुंचनेकी प्रतीक्षामें बैठा है। जो ५,१० रुपये पाता है वह ५००) की डिप्टीगिरीकी प्राप्तिसे अपने सब दाह और जलनोंकी शान्ति समझता है। जो एक पेशा कर रहा है वह समझता है कि इसके सिवाय दूसरे

सभी पेशोंमें सुख हो सुखकी शीतल धारा बरस रही है। इसी प्रकार इस जलते हुवे संसारमें जहां अपना शासन नही, वे स्वदेशीय-राज्य को ही अन्तिम लक्ष्य समझते हैं। जहां पढ़े लिखे कम हैं वे सबके साक्षर हो जानेमेंही सब प्रकारके संतापों-की शान्ति समझते हैं। किन्तु कहनेकी आवश्यकता नहीं कि इन सब समयों, स्थानों, अवस्थाओंपर भी पहुँचने का विलंब है कि मालूम हो जाता है कि वहांपर एक और अगली भट्टी हमारे जलानेके लिए धधकती हुई तय्यार रखी है। सभी देश और काल अपनी २ आगमें भयंकरता से जल रहे हैं। इस अग्निपूर्ण संसारमें सभी कुछ जल ही जल रहा है। ऐसा कोई पदार्थ नही जिसे ठंडा पाकर कही चिमटकर बैठ रहे।

❀ ❀

फिर इस आगसे कौन रक्षा करेगा ?

किन्तु दूसरी तरफसे रक्षा करनेवालेका प्रश्न है क्या तुम इस आगसे रक्षा, बचाव चाहते भी हो—इस आगसे बचनेकी इच्छा भी कर सकते हो या इच्छा करनेका भी सामर्थ्य नहीं है।

जो कुछ भी समझदार हैं वे दो चारबार आगमें अपने अंग जलाकर समझ जाते हैं कि यह चमकीली वस्तु जलादेने वाली है और फिर इससे सदा बचकर रहते हैं। उनके लिए तो वह दिन धीरे २ आजायगा जब कि वे इस दाह और जलनके क्षेत्रसे बाहर हो जायंगे। किन्तु उन पंतगोंकी कौन

रक्षा करे जोकि जल मरने हीके लिए पैदा होते हैं—जोकि आगको देखते ही दूर २ से उसमें भस्म होनेके लिए वेगसे खिंचे चले आते हैं और यदि कोई उनकी रक्षाके लिए मार्गमें बाधा खड़ी करता है तो वे उसी पर टकरा २ अपनी जान खो देते हैं किन्तु उधर जानेसे नही रुकते । क्या आप प्रतिदिन कामाग्निमें जलकर भस्म होनेवाले पतङ्गोंको नहीं देखते? क्या आप प्रतिदिन क्रोधाग्निमें लाल अंगारे हुए २ इनको नही देखते? क्या लोभकी आगमें जल मरोंको नही देखते? क्या मोहाग्निकी दारुण जलनसे व्याकुल क्रन्दन करते हुए प्राणियोंको नित्य नही देखते? इन्ही नाना प्रकारकी विषयाग्नियोंमें न जाने कितने पतंगे प्रतिदिन भस्म हो रहे हैं किन्तु आगको जलता देखकर रुक नहीं सकते—वे रुकनेकी इच्छा ही नहीं कर सकते।

हे जगतपिता सर्वशक्तिमान्! इनकी रक्षा करो।

यदि इस सीधा मौतके पास पहुँचानेवाले असाध्य रोगका निदान जानना हो तो महाराज मनुका आदेश सुनो। वे बताते हैं कि यह वो अज्ञान है जिसके वशमें आकर प्राणी इन अग्नियोंमें घीकी आहुतियां डालने लगते हैं जिससे कि ये तृप्त होकर उन्हें जलाना छोड़ दें। किन्तु दांव पाकर ये 'कृष्णवर्त्माये' और भड़कती है और उनको समाप्त करके ही तृप्त होती हैं उनका केवल एक काला अवशेष छोड़ जाती हैं।

❀ ❀

आग अपने आपमें कोई बुरी वस्तु नहीं है। आग तो हमारे चूल्होंमें जलती है और हमारा भोजन पकाती है। यह कुण्डमें जलती हुई पवित्र अग्नि "आग लग गई आग लग गई" कहकर बुझाने योग्य नहीं होती। सूर्य नामक महाऽग्नि पिण्डकी आँच हमें जीवन शक्ति ही प्रदान करती है। अग्नि तो इष्टदेव है, जीवन है, प्राण है। किन्तु यहां तो बात ही और की और हो रही है। वहां अग्निदेव हमारे छप्परपर विराजमान वर फूंक रहे हैं—हमारी सब वस्तुयें. वस्त्र, देह जलाये जा रहे हैं। यही कृत्रिम आग है जोकि बुझाने योग्य है, जो कि हमारा नाश कर रही है जोकि देखते २ संसारमें दिन दूनी रात चौगुनी बढ़ती चली जा रही है, जिसमें कि संपूर्ण संसार स्वाहा हुआ जा रहा है। वह हमारी स्वाभाविक जीवनप्रद अग्नि तो इस बढ़ी हुई सर्वतोव्यापी आगमें बिलकुल अनुभव ही नहीं होती कि यह कहीं है भी या नहीं। वह इन्द्रियोंका स्वाभाविक तेज, वह हमारे उदरोंमें जलनेवाली (चतुर्विध अन्न पकानेवाली) वैश्वानर अग्नि दिन प्रतिदिन मन्द और नष्ट होती जाती है. ज्यों २ यह कृत्रिम आग हमारा सब कुछ जला मारनेके लिए भयंकर रूपमें सब कहीं वेगसे फैलती जारही है।

❀ ❀

और तो और इस संसारके एक बड़े जन समुदायका सिद्धान्त ही यह है कि खूब नयी २ आगें लगाओ जिससे कि (उनके बुझानेके लिये) बहुत २ आविष्कार होवें। फलतः

खूब आगें लगायी जा रही हैं और खूब नये अविष्कार हो रहे हैं, नयी २ आग बुझाने की कलायें और यन्त्र बनाये जा रहे हैं। यह सच है कि ये सब आविष्कार प्रत्यक्ष वा अप्रत्यक्ष रूपमें इन कामनाग्निओं को बुझानेके प्रयोजनसे ही किये जा रहे हैं। अब पानीके (पुराने ढंगके) स्थान पर आग बुझानेके लिये सब कहीं नवाविष्कृत शराबों का प्रयोग दिन प्रतिदिन बढ़ता जा रहा है। आप आश्चर्य न करें कि दियासलाइयाँ (जिन्हें की जहाजों पर लाद कर दूसरे देशोंमें स्पर्धाके साथ भेजा जा रहा है) आग बुझाने ही के लिये है। तोप गोले, ४२ सेन्टी मीटरें, बम तथा सिगरेट आदि वस्तुयें आग बुझाने ही के लिये आविष्कृत की गई हैं। पंखे-नही नहीं, बिजलीके पंखे--आग बुझानेहीके काम आते हैं। मट्टीका तेल तथा स्पिरिट आदिका स्थान २ पर प्रयोग आग बुझानेके ही प्रयोजनसे हो रहा है।

❀ ❀

ये ही दो चार वस्तुयें नहीं किन्तु असंख्यों प्रकारकी सामग्रियाँ इस प्रयोजनके लिये आविष्कृत की गई हैं, जिन्हें कि लाखों मनुष्यो की सुसंगठित (Organized) मंडलियां और इनके विशाल कारखाने क्षणमें तय्यार कर धड़ाधड़ संसारके सभी कोनों में पहुँचाते जा रहे हैं। यदि कहींके लोग इन्हें नहीं माँगते तो पहले किसी युक्तिसे उनके घरोंमें आग लगा दी जाती है और फिर यह आग बुझानेका सामान उनकी भेंट

कर दिया जाता है। इस प्रकार वे भी इस नये सिद्धान्तमें दीक्षित हो जाते हैं और आविष्कारोंके लिये आगे बढ़ाना जान जाते हैं। दूसरी तरफ 'नई सभ्यता' का प्रचार असभ्योंकी आग बुझानेके लिये नाना रूपोंमे बड़े वेगसे किया जा रहा है।

यही नहीं, योरोप की कई जातिओंने तो पूर्वीय लोगोंकी आग बुझाने का सारा ठेका ही हाथोंमे स्वयमेव लेलिया है। वहाँके लोग तो चिल्ला चिल्ला कर कहते हैं 'अब हम अपनी आग स्वयमेव बुझालेंगे, बस करो, हम तो बिलकुल ठंडे ही हुये जाते हैं' किन्तु ये लोग कहते हैं "नहीं अभी तुममे कुछ गर्मी बाकी है" और अपने आग बुझानेके इस महायन्त्रकी चर्खी पर बैठे घुमाये चले जाते हैं।

❀ ❀

इन 'युगपरिवर्त्तक' आविष्कारोंके साथ साथ आग भी बढ़ती जाती है और इनसे जलता हुआ सारा युग इस तरह भी बदलता जाता है। क्योंकि सिद्धान्त ही यह है कि खूब आग लगाओ। नहीं तो आविष्कार कैसे होंगे। आविष्कार तो स्वयं उद्देश्य है किसीके साधन नहीं। यदि ये आग बुझानेके लिये (साधन) होते तो नयी २ आगें लगाने की क्या ज़रूरत होती। खूब आविष्कार बढ़ रहे है और आग भी प्रचण्ड रूप धारण करके बढती जा रही है। देखने वाले देख रहे हैं कि ऐसे आविष्कारो और आविष्कृत वस्तुओ सहित सब कुछ

भस्म करती हुई ऊँची ज्वालाओंमें" लपटों की विकराल जीभें लपलपाती हुई यह प्रचंड अग्नि सम्पूर्ण संसारको ग्रास करने के लिए आगे बढ़ती चली जा रही है।

❀ ❀

यदि इन बढती आती हुई ज्वालाओंमें जल मरनेसे बचना है तो जाओ कपिल मुनि के शासनमें जाओ, जिनका कि शास्त्र इसीलिये प्रारम्भ होता है कि इन तीन प्रकारके तापोंसे जिनमें कि संसार जला जा रहा है किस प्रकारसे 'एकान्त और अत्यन्त' छुटकारा हो।

अनिश्चित तथा क्षणिक छुटकारे का उपाय तो सब कोई जानता है और इनके बताने वाले बहुतसे दम्भी भी फिरते हैं। देखना, इनको कभी अपना गुरु न बनाना। इनके दमभरमें पार लगानेवाले चुटकलोंकी तरफ़ कभी ध्यान नहीं देना। ये रक्षा करनेके स्थान पर तुम्हें नरककी जलती हुई भट्टिओंमें ढकेल देंगे। सच्चे गुरु वही हैं जो उन आर्ष उपायों का उपदेश करते है जिनसे कि आग 'अवश्य' बुझ जाती है और ऐसी बुझती है कि फिर कभी जल उठने का डर नही रहता।

उन आग बुझानेकी दवा देने वाले डाक्टरों, वैद्यों, हकीमों-के मुँह न लगना जो कि तुम्हें ठग ले जाते हैं—ऐसी गोलियाँ या चूर्ण (Powder) खिला पिला जाते है जिससे कि उस समय तो आग बुझती मालूम होती है किन्तु असलमें और न जाने कितनी नयी आगें देहमें पैदा होकर जलाने लगती हैं।

उनके समीप फिर कभी न जाना। सच्चे वैद्य वही हैं जो कि सचमुच ओषधि देते हैं, ओष अर्थात् दाह को पी जाने वाला इलाज करते हैं।

❀ ❀

उन आगके ठेकेदारों को त्याग दो जो आग बुझाने वालों-का वेष धरकर आते हैं और बड़े २ ठाठ खड़े करके ऐसा दिखलाते हैं कि आग बुझाने का बडा भारी काम हो रहा है किन्तु असलमें इनकी आड़में अपनी बढ़ी हुई इन्द्रियोंकी अग्नि तृप्त करनेके लिये ईंधन बटोरते फिरते हैं। उन्हें कह दो कि तुम इस श्रेष्ठ कामके बिलकुल अयोग्य हो। जो अपनी चिताके लिये लकड़ियाँ जमा कर रहा है वह थोडी देरमें अपनी लगाई आगमें जल मरने वाला दूसरों को आगसे क्या बचायगा। सच्चे आग बुझानेवाले वही हैं जिन्हें कि स्वयं कोई आग नहीं सता रही—जो स्वयं सब प्रकारसे शान्त हो चुके हैं। वेही आग बुझा सकते हैं और बुझा रहे हैं। यह उन्हीं के केवल करुणा प्रेरित कर्मों का फल है कि यह संसार अभी तक बचा हुआ है, नहीं तो न जाने कबका यह इस प्रचण्ड आग में जल कर राख हो गया होता।

❀ ❀

उन सब लोगोंसे बचकर रहो जो कि आगमें प्रचण्ड जल रहे हैं किन्तु आग बुझाने का ढँढोरा पीटते हुए तुम्हारे पास बिना बुलाये आते हैं। ये न जाने कितनोंकी झोंपड़ियाँ फूंक

चुके हैं और फूँक रहे हैं। इनसे बचकर रहो, विशेषतः उन बड़ी सामर्थ्य रखने वालोंसे जो जैसी आग चाहते हैं भड़का देते हैं। सब निर्बल पुरुष उसी आगमें 'भर भर तड़ तड़' जलने लगते हैं। इन आगके खिलाड़ियों से बच कर सँभल कर रहो। इनकी आग देख कर रंग मत पकडो किन्तु अपनी शक्तिओं का उपयोग लो।

अपने आप आग लगानेसे बाज़ रहो। अरणी लकड़ियां बने हुए आपसमें रगड़ कर मुफ्तमें आग न लगा बैठो। और यदि कोई दूसरा आदमी आग फैलानेके लिये तुम्हारे घरमें अंगारे फेकता है तो उन्हें तुरन्त प्रेम जलसे बुझा दो या कमसे कम आवेगोंकी फूंक मार कर (या बढ़े आवेगोंके पंखे चला कर) इन्हें सुलगने मत दो।

❀ ❀

जलते हुए संसारसे सम्बन्ध तोड़ कर अलग खड़े हो जाओ और पहिले बैठ कर अपनी आग बुझालो। ज्यों २ यह कृत्रिम आग बुझती जायगी त्यों २ तुम्हारा अपना स्वाभाविक तेज प्रकाशित होता जायगा। आग बुझाते जाओ जबतक कि अग्नि-सिद्धि न प्राप्त हो जाय (Fireproof न बन जाओ) जिससे कि फिर कोई भी संसारकी आग तुम पर असर न कर सके। यह निःसंदेह है कि अपनी सब आग शान्त हो जाने पर फिर सिवाय परोपकारके, दूसरोंकी आग शमन करनेके और कोई काम नहीं रहता।

❀ ❀

ऋषियोंकी बात मानो। इन अग्नियोंको तृप्त करना छोड़दो-इन्हे भोजन देना छोड़दो। जगत्पिता भगवान् बड़े ही दयालु हैं उनकी सृष्टिकी ये अग्नियां चाहें कितनी भयंकर और जला डालनेवाली क्यों न हों, किन्तु ये सब स्वयं बुझ जानेकी प्रकृति रखती हैं, यदि हम केवल प्रतिदिन भोजन देकर इंधन डाल २ कर इन्हें बढ़ाना और फैलाना छोड़ दें। यह हमी हैं जिन्होंने कि इन स्वमेव बुझ जानेवाली किन्तु कभी तृप्त न होनेवाली अग्निओंको भोजन दे देकर यह भयंकर अग्निकाण्ड उपस्थित कर दिया है कि संसारमें जहां भी देखते हैं वहीं पर ये दग्ध करनेवाली लपटे भगवान्की प्रजाको घोर निर्दयतासे जलाये जारही हैं।

❀ ❀

हे आनन्दमय! तुम्ही सबकी एक निश्चित और अन्तिम शरण हो। अन्तमें तुम्हारा ही शीतल संस्पर्श दग्ध आत्माओंको स्थिर शान्ति प्रदान कर सकता है। तुम ही कृपा करो। तुम ही करुणा कर हमारे उन मुँदे हुए ज्ञानतन्तुओंको खोल दो जिनसे कि तुम्हारा वह संस्पर्श प्राप्त होता है। फिर तो स्वामी! तुम्हे पाकर सब जगह तुम्हारी शीतलता ही शीतलताका परि-ज्ञान होगा, इन घोरसे घोर आगोंमें फिरते हुए भी तुम्हारा ही सुखस्पर्श अनुभूत होगा, क्योंकि ऐसा कौनसा काल या देश है जहां कि तुम अपने आनन्दमय रूपमें वर्त्तमान नहीं हो।

❀ ❀

हे आनन्दघन ! जब कि संपूर्ण ही संसार जल रहा है तो उसकी रक्षा तुम्हारे सिवाय कौन करे। भयंकर शब्द करता हुआ समस्त ब्रह्माण्ड जला जारहा है। सभी जलते हुवे प्राणी व्याकुल मुखोंसे 'त्राहि त्राहि' चिल्ला रहे हैं। रक्षा करनेवाला कहांसे आवे? क्या यह आकाश तक पहुँचनेवाली और दिगन्तों तक फैली हुई ज्वालायें इस सुन्दर सृष्टिको समाप्त करके ही छोडेंगी। हे आनन्दघन ! तुम ही यदि ऊपरसे सहस्रों शीतल धाराओंमें मूसलाधार इस पर बरसो तभी इस अग्निकाण्डके बुझनेकी कुछ संभावना है—तभी कुछ संसारके प्राणियोंकी रक्षा होसकती है। बरसो, बरसो, आनन्दघन ! ऐसा बरसो कि यह वसुन्धरातल जलप्लावित होजाय, सब जगह पानी ही पानी होजाय। ऐसा बरसो कि सब आग बुझ जाय और सब जली हुई राख और अधजली हुई वस्तुयें भी बहजांय और यह ससार शान्त निर्मल और धुला हुवा निकल आवे।

❀ ❀

नहीं नहीं, मैं बड़ा अज्ञानी हूँ। आनन्दघन ! तुम तो निरन्तर बरस रहे हो और ऐसे ही बरस रहे हो। यह हमी हैं जो कि अपने 'आपे' के बड़े पक्के २ दृढ़ मकानोंमें बन्द हुवे २ अपनी जलाई आगोंमें जल रहे हैं और सब स्थानों, समयों पर चिल्लाते फिरते हैं 'सब जगह आग ही आग है हम जले जाते हैं।' यह क्यों न हो जब कि मकानके अन्दर प्रायः चौबीसों घण्टे चलने वाला 'मन' नामक शक्तिशाली यन्त्र

सदा आग पैदा करनेके ही काममें लगा रहता है। बाहर तुम्हारी वृष्टिमे विहार करने वाले 'अनिकेत' महात्मा ऋषि-गण बेशक कहते हैं कि सब जगह आनन्द ही आनन्द बरस रहा है, किन्तु हम उनका कैसे विश्वास करें। कभी २ जब हम ज्वलन पीड़ासे भाग कर अपने मकानके झरोखोंके नीचे जा खड़े होते है तब हमें भी तुम्हारे उन जलकणोंकी शीतलता अनुभव होती है। किन्तु वहाँ कब तक खड़े रहें। हमारी पैदा की हुई प्यारी आगें हमें फिर बुलाती हैं। जलते हैं और भागते हैं, इस प्रकार क्षण क्षणमें इधरसे उधर बेचैनीमें फिरते हैं किन्तु बन्द मकानसे निकल नही सकते। यह सब तरफसे पक्की तौरसे बन्द है जिससे कि 'कोई दूसरा न आ सके'। क्या बाहर निकलनेके लिये इसे कहींसे तोड़ डालें? हा, यह तो 'मेरा' मकान है। और अब यह हमसे टूट कैसे सकता है? हम अपने इन स्वार्थताके मकानोंको दिनदिन दृढ़ पक्का बनाते गये हैं और स्वयं निर्बल होते चले गये हैं। वे ही धन्य हैं, जिनके कि अहंकारके मकान अभी कच्चे हैं, जिनकी छतें पक्की पटी हुई नही हैं। वहाँ तो यह संभव है कि तुम्हारी अनवरत होनेवाली वृष्टिमें वे चूने लगें और अन्दर की आग बुझ जाय और धीरे २ मकान ही ढय जांय। किन्तु हमारा क्या होगा? हे बरसने वाले! तुम्ही इतनी ज़ोरसे बरसो कि इनकी नीवें हिल जायँ, ये पक्केसे पक्के मकान नष्टभ्रष्ट होकर बाहरकी तरफ गिर पड़ें। निर्बल यही प्रार्थना

कर सकते हैं। नहीं तो फिर अन्तमें जब कि ये अग्नियाँ बढ़ती हुई इस मकानको ही जला देंगी ऊपर बल्लियोंमें भी आग लग जायगी, और असीम पीड़ा पहुँचाता हुआ यह मेरा सब कुछ अपने आप ढय कर जलता हुआ धड़ाम धड़ाम भूमिसात् हो जायगा (मैं समाप्त हो जाऊँगा या रहूँगा मैं नहीं जानता) तब तो तुम्हारी वे शीतलदायिनी नित्य वृष्टि इस स्थान पर भी निष्प्रतिबन्ध पड़ेगी। पर तब क्या होगा?

हे परमकारुणिक! हमें अपनी इस सदातन सुखवृष्टिके ग्रहण करनेके लिये जितना जल्दी हो अपना महान बल प्रदान करो। कृपा करो। हमारी यह प्रार्थना सफल बनाओ

'सुख की वर्षा करो, आनन्दघन! चहुँओर।'

तेरी धोखे बाजी !!!

संसारके रचने हारे ! आज मैं तुझे जी भरके धोखेवाज़ कहना चाहता हूँ। तुझे धोखेवाज़ कह कर पुकारना आज मुझे बड़ा ही प्यारा लग रहा है। मेरे जीका प्रेमभाव प्रकट करनेके लिये इससे अधिक भाव पूर्ण शब्द इस समय मुझे ढूंढे नही मिला। इस तेरे संसारमें धोखे ही धोखे देखकर मैं बड़ा विह्वल हुवा करता था किन्तु आज सब ठीक ही ठीक दीखता है और तुझे धोखेवाज़ कह कर आनन्दमे मगन हूँ।

हे मेरे प्यारे धोखेवाज़ ! मेरे धोखोंसे उद्धारक धोखेवाज़ ! परमदयालु और दुष्टोंके दलन करनेवाले धोखेवाज़ ! तेरे धोखोंका पार इस संसारमें किसीने न पाया। वड़े २ ज्ञानका अभिमान करनेवाले अन्त तक यही कहते गये कि "अभी तक हम धोखेमें थे"।

❀ ❀

इस संसारमें धोखा देनेवाले लोग (अपने साथीका रुपया मार कर या कोई वस्तु ठगकर) कैसे आनन्दित होते हैं। किन्तु हे धोखेवाजोंके धोखेवाज़ ! इससे पहिले वे तेरे धोखेमें आगये होते हैं। तेरे सर्वत्र फैले (अदृष्ट) सूत्रोंको न देखकर धोखा

खा जाते हैं कि धोखा देनेसे मेरा क्या बिगड़ेगा। किन्तु धोखे का मनमें संकल्प होते ही मनुष्य इन जालकी तरह फैले सूत्रोंके किसी फेरमें तत्क्षण बंध जाता है जो कि यद्यपि उस समय कुछ भी मालूम नहीं होता किन्तु समय आने पर दण्ड भूमि पर ला खड़ा करता है—इसे कोई भी नहीं रोक सकता।

हम चोरी करते, झूठ बोलते और नाना धोखे करते हुवे ऐसे निशंक फिरते हैं कि जानो कुछ भी नहीं हुवा। किन्तु एक २ बात पर जो तेरा अदृष्ट ठप्पा हम पर लगता जाता है उसे कोई भी नहीं देख पाता जिसके अनुसार तेरे दूत देखकर हमें पीडा दे जाते और सब कुछ भुगा जाते हैं। बहुत बिरले ही आते हैं जो कि तेरे इस धोखेमें नहीं पड़ते—जो कि इन सूक्ष्म तन्तुओंको देखते हैं और किसीको धोखा नहीं दे सकते। ऐ सांसारिक जनों! तुम्हें भी जब कोई धोखा देवे तो उस पर केवल तरस खाओ—उस परम धोखेबाज़को याद करो जिसके धोखेमें वह बिचारा आया हुवा है, क्योंकि इस संसारमें जो जितना बड़ा धोखेबाज है वह दीन उसके धोखेमें उतना ही गहरा फंसा हुवा है। उस पर तरस खाओ, वैसा ही बदला लेनेमें अपने आप धोखा मत खाओ।

❀ ❀

तुम हर एक चीज़के पीछे बैठे हो पर कुछ भी मालूम नहीं होता। लोग ताल ठोक २ कर तुझे आह्वान करते हैं कि यदि कोई ईश्वर है तो हमारे सामने आये किन्तु तुम अपने अगाध

मौनमें चुप बैठे रहते हो—उनके जीभ और हृदयमें परिपूर्ण रमे हुवे भी चूँतक नही करते, उनके सदा 'सामने आये' हुवे भी नहीं दिखा देते कि मैं यह हूँ।

तुम सब जगह सब कुछ हो, संसारके एक मात्र सार हो, किन्तु सब जगह अभावकी तरह होकर बैठे हुवे हो। हम सदा यही समझते हैं कि तुम कभी भी कही पर भी नही हो। तुमने आँख कान वाला अपना शरीर न धारण कर हमें बड़ा धोखा दे रखा है। तुम हमारा एक एक काम चुपके २ देख रहे हो गुप्तसे गुप्त, अन्धेरीसे अन्धेरी जगह पर तुम पहिले आसन लगाये बैठे हो—हमारे हृदयमें घुसे हुवे हमारा मन जब जिसके विषयमे जो कुछ गुनगुनाता है सब बैठे हुवे सुन रहे हो, किन्तु हे धोखेबाज़! कभी भी मालूम नही होता कभी आशंका तक नही होती। कभी स्वयमेव बोल भी नहीं पड़ते कि "मैंने देख लिया" "मै यहां बैठा हूँ"। 'मै अभी यहांसे नही निकला' 'अभी बिल्कुल एकांत नही हुआ' इत्यादि।

हे परमपूजयनीय धोखेबाज़! मनुष्य किस प्रकार तेरे दर्शन करें।

❀ ❀

तेरे इस संसारमें पापी लोग मौज उड़ा रहे हैं—धन, मान संपत्ति सभी चले आरहे हैं। दूसरी तरफ पुण्यात्मा लोग आपत्तियां झेल रहे है—एकके पार उतरते ही दूसरी पहाड़की तरह आ खड़ी होती है। जो लोग अन्यायसे दीनोंको खा रहे

है, हे धोखेबाज़ ! तू उन्हें मन माना दे रहा है, उनका बल सामर्थ्य बढ़ा कर और पाप करवा रहा है; कुछ भी नही विचार करता कि देखनेवाला संसार क्या परिणाम निकालेगा। और जो सज्जन लोग यम नियमोंके कठिन मार्ग पर चलने लगते हैं, हे धोखेबाज़ ! तू न जाने कब के पुराने रजिस्टर निकाल कर उनके पुरानेसे पुराने हिसाब चुकाने शुरू करता है, कुछ भी तरस नही खाता कि दुखोंसे घबरा कर वे फिर कही उसी प्रेममार्ग पर तो नही चले जांयगे। तूने संसारको यह ऐसा धोखा देरखा है कि सब मुंह बाये खड़े हैं, कुछ समझ नही आता क्या करे। वह दिन जब कि पापका घड़ा भर कर फूटेगा, वह दिन जब कि क्षणभरमें तख़्ता पलटेगा और जहाँ उजाड़ है वहां उद्यान खड़े होगे, वह दिन तूने भविष्यके गर्भमें ऐसे छिपा कर रखे हुए हैं कि कोई भी नहीं देख पाता। सब चकराये फिरते हैं।

लोग देखते है कि अन्यायी पुरुष मुक़द्में जीत रहे हैं, लड़ाइयां जीत रहे हैं—विजय पर विजय पा रहे हैं। हे 'सत्य-मेवजयते नानृतं"के आदि उपदेष्टा धोखेबाज़ ! तब यही मालूम पड़ता है कि यह गीत किसी जंगली भोले गडरियेकी ही बल-बलाहट है। दूसरी तरफ लोग देखते हैं कि सदाचारी पुरुष अनथक परिश्रम करते हुए भी पेट भर नहीं पाते और मुफ्तका खाते हुए विषयी लोग उनकी तरफ उँगली उठा २ कर उनके तपस्विपनको हंसते हैं। हे परम न्यायकारी धोखेबाज़। तब

यही मालूम पड़ता है कि इस विश्वमें कोई न्याय नहीं, नियम नहीं, नियम चलानेवाला नहीं।

आहा! तूने संसारको यह कैसा धोखा दे रखा है, कैसा चक्करमें डाला है। उन आड़में रक्खे हुए "ब्रह्मानन्दके सुख" और "नारकीय भट्ठिओं"को कोई नही देख पाता। कबीर जैसे देखनेवाले सब चिल्ला चिल्ला कर संसारको सचेत कर रहे हैं किन्तु लोग तेरे धोखेमें ऐसे आये हुए हैं कि वहे चले जारहे है कोई नही सुनता।

❀ ❀

तेरा नाम सुनकर लोग तुझे ढूँढ़ने निकलते है किन्तु तू सदैव अपनेको आड़में छिपाये रखता है। कहते है कि विद्यासे तेरी प्राप्ति होती है इसलिये जो पढ़े नहीं वे पढ़ते हैं—नाना विद्या और कलाओंका अध्ययन करते हैं कि तुझे ढूंढ़ेंगे—कोई संस्कृत भी पढ़ते हैं और दर्शनोंके सूत्रोंसे संनद्ध होकर तेरा पीछा करते हैं, किन्तु हे प्रवीण धोखेबाज़! तू किसीके भी हाथ नहीं आता, कभी किसी कभी किसी झाड़ीके पीछे छिपा रहता है। कोई विज्ञान पढ़ते है और अपने नये २ आविष्कारों और कलाओंके बलसे तुझे फांसना चाहते हैं किन्तु उनकी आंखोंमे धूल डालता हुआ कहीं गुप्त बैठा रहता है। ये मत सम्प्रदायवाले हैं जो कि सभी तेरे द्वारका 'सीधा मार्ग' बतलाते हैं, किन्तु वैष्णव, शैव, ईसाई, मुसल्मान, किसीने भी तुझे कभी लाकर न दिखाया। लोग नयी नयी आशाओंसे

सनातनधर्मी या आर्यसमाजी वनकर तुझे देखने खड़े होते हैं किन्तु तू फिर किसी और ओटमें आया हुआ दिखाई नहीं देता। प्रायः सभी एक स्वरसे कहते हैं कि एक योगका साधन है जो कि इस साध्यके लिये अमोघ है किन्तु जब चेले लोग नेति धौति करने लगते हैं, बड़े श्रमके वाद प्राणायाम लगाने लगते है तब भी तू अंगूठा ही दिखाता रहता है। नाना प्रकारके मंत्र, यंत्र, जप, तप भी तुझे फुसलाकर कावू नही कर सकते। तू हमेशा किसी भावमें प्रच्छन्न ही रहता है।

हमारे साथ यह आंखमिचौनी (लुकलुकइय्यां) का खेल तू न जाने किस समयसे खेल रहा है—हम ढूंढ़ते फिरते हैं और तू लुकता फिरता है। न जाने धोखा दे दे कर सदा लुके रहनेमें तुझे क्या आनन्द आता है कि कभी भी नहीं मिल जाता-दृष्टिगोचर नहीं हो जाता; यद्यपि हम जानते है तू कही पर भी मिल सकता है। और जिसे मिलना होता है, फिर वह चाहें निरक्षर हो या किसी भी मतका अनुयायी न हो, उसके सन्मुख खड़ा होकर स्पष्ट बता देता है कि मैं तुझे मिला हुआ हूँ।

❀ ❀

तुझ निराकार अव्यक्तने यह इतना साकार जगत रच रखा है। तू सबको खिलाता रहता है किन्तु स्वयं कुछ नहीं खाता इसलिये मैं तुझे धोखेवाज़ कहता हूँ।

तूने हमारी आखें वाहरकी तरफ लगायी हैं, जिससे कि हम सदा वाहरकी नयी २ ठीकरियां बटोरते रहते हैं किन्तु

कभी अन्दरके ख़ज़ानेको नहीं देख पाते इसलिये मैं तुझे धोखेबाज़ कहता हूँ।

तेरी सृष्टिमें बड़े वेगसे गतिमान् वस्तुयें स्थिर मालूम होती है। तूने सब कुछ दिखाने वाली प्रकाशकी किरणोंको अदृश्य बनाया है इसलिये मैं तुझे धोखेबाज़ कहता हूँ।

तेरी सृष्टिमें जो हमारे सच्चे हितैषी हैं वे हमें शत्रु मालूम होते है। तूने स्वार्थियोंको मीठी, फुसलाने वाली वाणी दी है। इसलिये मैं तुझे धोखेबाज़ कहता हूँ।

तूने ऊपर चढ़ना कठिन बनाया है और नीचे गिरना सहज। तूने उत्कृष्ट फलोंको बड़े कड़े छिलकेमे बन्द रखा है। तूने बिना पिछली जगहको त्यागे अगली जगह जाना असंभव बनाया है इसलिये मैं तुझे धोखेबाज़ कहता हूँ।

तूने आग जैसी मनोहर चीज़को अंगुली जला देनेवाला बनाया है। तूने गुलाबके चारों तरफ कांटे लगाये हैं। तूने सांप जैसे सुन्दर प्राणीके मुंहमें विषकी थैलियां रखदी हैं इस-लिये मैं तुझे धोखेबाज़ कहता हूँ।

तेरी धोखेबाज़ियों पर मैं और अधिक इशारे नहीं करना चाहता। बस इतना कह देना पर्याप्त है कि संसारमें जो भी कुछ सचाई है उसे तूने 'हिरण्यमय पात्र' से ढक रखा है इस लिये मै तुझे धोखेबाज़ कहता हूँ।

❀ ❀

हे संसारके सृजनहारे! तुम सर्वविध मायाओंसे रहित

हो, परम विमल हो। किन्तु मैं जिस अपने संसारमें रहता हूँ वह अवश्य धोखेकी टट्टी है—इसमें जो कुछ जैसा है वैसा नही मालूम होता। इसमें रहते हुवे मुझे तुम्हारे विमल गुणोंको गानेके लिये भी धोखेके शब्दोंके सिवाय और शब्द कहाँसे मिलें।

बड़ी मजेदार बात यह है कि धोखेके हट जानेपर ही जान पड़ता है कि यह धोखा था—धोखेके समयमें नही। हम अपने को धोखेमें नहीं जानते इसी लिये हम धोखेमें हैं। यह 'न जानना' ही हमारे सब धोखोंका वास्तविक कारण है। इसलिये, हे सृष्टिकर्त्ता, जो तुझे सचमुच ही धोखेबाज़ (ही) जान लेता है तो तुम धोखेबाज़ कहां रहते हो। हे स्वयंप्रकाश, परम विशुद्ध ज्योति! तुम्हारी निर्मल प्रभा ज्यों २ हमें कुछ मिलती जाती है त्यों २ मालूम पड़ता जाता है कि यह धोखा है यह धोखा है। हे पावन सूर्य! इस प्रकार जो पुरुष तुम्हारी उद्धारक पवित्र रश्मियोंका सहारा लेते हैं वे दिन दिन अधिक २ प्रकाशित जगत्‌में रहने लगते हैं और अन्तमें तुझ ज्योतिको प्राप्त होते हैं। फिर उनका संसार धोखेका नहीं रहता। संसार के वे सूक्ष्मसे सूक्ष्म किन्तु कार्यकारण भावमें अटलतासे सुसंगठित तन्तु उन्हें स्पष्ट दीखते हैं। तब न कोई धोखा रहता है न कोई धोखेबाज़, न कभी धोखेमें आना होता है और न धोखा देना।

नग्नता

मैं कब नग्न होऊँगा? ये जो दृश्य और अदृश्य नाना प्रकारके वस्त्र आच्छादन मैंने अपने पर डाले हुवे है उन्हें उतारकर कब मै नङ्गा होऊँगा?। हे प्रभो, हे जगन्मातः! मुझे जल्दी ही नङ्गा कर दो—बिलकुल नंगा कर दो—जैसा मैं माताके पेटसे नंगधडंग पैदा हुवा था वैसा ही कर दो।

❀ ❀

नङ्गा होने मे क्या कोई असभ्यता है? क्या कोई लज्जाकी बात है?। कौन कहता है? लज्जा तो कमज़ोरिओंके दीखने-की होती है, न कि नङ्गा होने की। हम आवरण इसीलिये धारण करते हैं कि हमारी ये (लज्जाकारक) कमज़ोरियाँ ढ़क जाँय। निर्दोष अर्थात परिपूर्ण पुरुष होकर नङ्गा रहनेमें कोई नही शरमाता।

मेरा कुड़ता जब फटा पुराना होता है तब मैं जरूर ऊपर कोट पहिन लेता हूँ, किन्तु जब यह सुन्दर नया होता है तो कोट उतारकर इस नंगे कुड़तेको सब कहीं दिखाता फिरता हूँ। अच्छी निर्दोष चीज़को कौन ढांपता है।

❀ ❀

यद्यपि मैंने बहुतसे कपड़े आवेष्टन आदि लपेट रखे हैं, तथापि स्वरूपतः मैं नग्न ही हूँ। इन सब आवरणोंके अन्दर यदि देखा जाय तो मैं सदा अपनी अचल नग्नतामें स्थिर मिलूँगा।

मैं तो सर्वथा नग्न हूँ। जिसे लोग नङ्गा कहते है यह कुछ नङ्गा नहीं। इस नंगे देह की अवस्थामें तो मुझपर कई प्रसिद्ध २ ख़ोल (कोश) चढ़े होते हैं। इन चार या पाँच ख़ोलोके भी भीतर मैं हूँ—नितान्त निरावरण, केवल होकर वर्त्तमान हूँ। वहाँ मेरी अभीष्ट नग्नता है। इसी परम नग्नतामें मैं विश्वमाता के गर्भसे बाहर हुआ था।

❀ ❀

प्रायः जब मुझे वस्त्र नया २ मिलता है यह बड़ा सुन्दर मुलायम होता है। इसके कारण बहुतसे लोग मुझसे प्रेम करते हैं, मैं भी इसके घमण्डमें रहता हूँ और बहुत से कर्त्तव्य कार्य नहीं करता कि कहीं यह मैला न हो जाय। किन्तु धीरे धीरे साठ सत्तर बरसमें यह पुराना हो जाता है, सौन्दर्य जाता रहता है, यह सलवटोंसे भर जाता है। तब लोग इसे देख हँसते हैं। यह वही है जिसपर लोग कभी मुग्ध रहते थे। और अन्तमें जब रोज २ टाँके लगाते और सिलाई करते भी नहीं चलता तो—यद्यपि अब भी छोड़नेको जी नही करता—'प्रकृति' इसे प्रसह्य उतारकर नया वस्त्र दे देती है।

जिस 'फैशन' का वस्त्र मेरे अनुकूल होता है वैसा ही मुझे मिलता है। यद्यपि सभी वस्त्र पाँच प्रकारके सूत्रोंसे बने हैं

किन्तु ये बनावटमें लाखों प्रकारके है। मुझे कभी ('कोड़ी' नामक) छोटा, कभी बहुत बड़ा (कुंजराख्य), कभी एक तरफको लबा ('ऊँट' कहाता है), कभी चौड़ाई रहित (गंडोया) और कभी (भेड़ नामक) ऊनी वस्त्र—जिस प्रकारके 'फैशन' की तरफ पिछले दिनों में वह गया होता हूँ उसी फैशनका (अंग्रेजोंकी भाषामें कहें तो कभी cat fashion, कभी Dog fashion, कभी Eliphant or Cammel fashion का) वस्त्र मुझे मिलता रहता है।

❀ ❀

कोई भी बुराई नङ्गी नही रह सकती।

शरीर निर्बल है तो वस्त्रोंमें ढांप दिया जाता है। बदसूरती रहती है तो उसे ढांपनेके लिये आभूषण, और सजावट कर देते हैं। नेत्र निर्बल होते हैं तो उनपर चश्मा लगा देते है। बाल पक जाते हैं तो काला रोगन चढ़ा देते हैं। मुख निस्तेज हो जाता है तो 'पाऊडर' से ढांप देते है। शरीर निर्जीव हो जाता है तो कफनसे ढांप देते हैं। और पाप किये जाते हैं तो उन्हें असत्यतासे आवृत कर देते हैं।

एवं निर्बल आत्मा नग्न नहीं रह सकता और एक ख़ोल अपनेपर ढक लेता है। किन्तु यह ख़ोल भी निर्बल हो जाता है तो उसके बचाव के लिये उसपर दूसरा खोल चढ़ा लिया जाता है। एवं ख़ोलों पर खोल चढ़ने लगते है। इसी प्रकार हमने अपने पर ये पांच कोश चढ़ाये हैं। (एक स्थूल दृष्टान्तसे

देखिये कि हम इस स्थूल देहके धड़पर ही बनियान; कमीज़, वास्कट, कोट, ओवर कोट, या गाउन, ओढ़ना, पर्दा आदि एक पर एक आवरण चढ़ा लेते हैं)

❀ ❀

और जैसे विद्युत ऊपरी पृष्ठ पर आ जाती है, इसी प्रकार से अहंकार रूपी आत्मा हमारी ऊपरी २ खोलपर आ रहती है।

आत्माने अपनी रक्षाके लिये पाँच शरीर रूप आवरणोंको धारण किया तो आत्मा इस अन्तिम स्थूल देहमें आ गया। अब हम इसे ही अपना स्वरूप (आत्मा) मानकर इसीकी पूजा करने—इसे 'चन्द्रमुखी' और 'पीयर' साबुन तथा विविध तैलादिकोसे साफ सुथराकर वस्त्रोमें लपेट रखने—में ही आत्म कल्याण समझते हैं।

किन्तु ज्यूँ ही निर्बली भूत देहके लिये एक दूसरे आवरण की जरूरत हुई त्योंहि आत्मा वहाँ आगयी। अब चाहे अंदर का देह कैसा रोगोसे भरा, मरा, वेडौल हो किन्तु ऊपरका कुड़ता कालरदार बढ़िया होना चाहिये, क्योंकि इसका अच्छा होना ही हमारा अच्छा होना है।

फिर जब हम कोट पहिरने लगते हैं तो आत्मा कुड़तेसे निकल कोटमे आ जाता है। अन्दरका कुड़ता महीनोंका मैला या जीर्ण भले ही हो किन्तु वाह्य कोट साफ और 'फैशनेवल' चाहिये। इसकी प्रशंसा ही हमारी प्रशंसा है।

एवं हमारी यह आत्मा वूटजूतों, दुशालों तथा मकानके

बाहिरी हिस्से आदि उपरले आवरणोंमें वास करने लगती है और तब हम वह नहीं ध्यान करते कि अन्दर कोढ़ है, मलिनता है, दरिद्रता या पाप है।

❀ ❀

किन्तु ज्यों २ इस प्रकार पहिले २ आत्मभूत खोलके लिये उरापर अगला अगला खोल चढ़ता जाता है, त्यों २ निर्वलता बढ़ती जाती है और हम विनष्ट होते जाते हैं अन्दर का निवासी असली आत्मा नग्नतासे भ्रष्ट हो इन असंख्यों खोलोंमे दवता मुंदता और घुटता जाता है। उसका शब्द इन पॉच बड़ी २ 'गुफाओं'को पारकर हम तक नही पहुँच सकता। उसकी स्वाभाविक ज्योति इन पर्दोंमें मन्द होती हुई समाप्त हो जाती है और हम इस अन्धेरेमे अपने आपको ही गुम कर देते हैं—हम नहीं जान सकते कि हम कौन है। इस प्रकार चारों तरफ प्रतिदिन खड़ीकी जाती हुई हमारी इन अहंकारकी घनी २ ऊँची दीवारोंके भीतर वह रोज अधिक २ घोर क़ैद मे पड़ता जाता है।

क्या इस कठिन कारागारसे उसे मुक्त करनेमें कोई लज्जा की बात है? क्या इन सब आवरणोंको फाड़कर अपने स्वरूपमें आ जाना असभ्यताका काम है?

ये सब अज्ञान और निर्वलतायें दूर हो जायँगी, जब हम सब आवरणमलोंसे नग्न अपने विमल रूपमें आ जायेंगे, जब

इन सबोंमेंसे अहंकारात्माको निकाल अपने असली आत्मामें केन्द्रित हो जायँगे।

❀ ❀

इन सबसे नग्न कैसे हों?। स्पष्ट है कि किसी प्रकार निचले २ खोलको पूर्ण (पुष्ट) करके ऊपरलेकी अपेक्षा न रख उसे २ शानतः छोड़ते जाँय तो निःसंन्देह अन्तमें हम सर्व-निरपेक्ष, स्वयं समर्थ, स्वयं ज्योति तथा निरावरण स्वरूप निकल आयँगे। तब हमें कोई आवरण ढांप नहीं सकेगा।

अब आवृत दशामे हम अवश्य कभी कभी माताको स्मरण कर रोने लगते हैं। किन्तु माताको कहाँसे पावें? माता तो निज विनिन्द्र प्रेमपूर्ण आँखोंसे अपने पुत्रोंको हर समय ढूंढ़ रही है, किन्तु हम ही निर्वलताओंके मारे अपने आपको इन खोलों और चोलोंमे छिपाये फिरते हैं। माता हमे कैसे पहिचाने? और इसके विना माता कैसे मिले? जब कभी हम निज माताके सदृश अपने उज्वल तेजस्वी मुखको इन सब खोलोंसे बाहर निकालेंगे तो तत्क्षण अपनेको माताके अंकमें पहुँचा पांयगे, क्योंकि तब माता अपने लालको तुरंत पहिचान लेगी और तब मुखचूम वह परम सन्तोष देगी जिसे कहीं न पाकर हम व्याकुल भटक रहे थे।

मेरी यात्रा

यात्रीको विश्राम कहां है ?

मैं अपनी राह पर चलता २ हार नही गया हूं—मेरी टांगें कोई ऐसी थक नही गयी हैं। किन्तु जब मेरे प्रिय हितकारी मुझपर तरस खाकर बड़े करुणा भरे शब्दोंमें मुझे विश्राम लेनेकी सलाह देते हुवे कहते है कि "तेरा जिस्म बिलकुल निढाल हो चुका है और तेरे हरएक अंगसे थकावटके निशान नज़र आते हैं" तब मैं भ्रममें पड़ जाता हूं और क्षण भरके लिये अपनी दशा ऐसी ही समझने लगता हूं। किन्तु स्वस्थ होकर जब ज़रासा विचारता हूं तो सचमुच मुझे अपने (जिस्म) पर कोई करुणा नही आती, किन्तु मुझे तो तब उनके इन करुणा भरे वाक्योंपर रहम आने लगता है। और मैं चुपचाप अपनी राहपर चल पड़ता हूँ।

ऐसी बहकाहटमें आना कभी २ अपनेको भूल जानेसे ही हो जाता है, पर फिर विचार होते ही अपनेमें चलनेकी अनन्त शक्ति अनुभव होने लगती है और तब मेरा उत्साह कोई भी वस्तु भंग नही कर सकती।

❀ ❀

भाई ! मैं कैसे विश्राम लूं? मैं तो एक ऐसा अनवरत पथिक हूँ जिस विचारेको अनन्त सालोंसे लगातार बटोही बने रहनेपर भी अपनी राहका अन्तिम छोर कभी भी दिखाई नहीं दिया है। फिर मैं कैसे कहीं बीचमें सुस्तानेके लिये बैठ जाऊं? बिना सड़कके अन्तको पाये मुझे कैसे कल पड़े? । मुझे तो प्रायः संदेह हो जाता है कि यह विस्तृत मार्ग कभी समाप्त भी होगा (या नहीं, जब कि मैं निश्चिन्त हो ठिकाने पर सुख चैनसे बैठूंगा)।

बीचमें आराम लेनेका ध्यान आते ही जी क्यों न घबड़ाने लगे जब कि सामने देखता हूं कि मेरे चलनेके लिये सदैव ही एक न समाप्त होने वाला मार्ग पड़ा हुआ है—विशेष कर जब कि युक्ति और तर्ककी दूरबीनोंसे भी इस सीधे मार्गकी सुदूरवर्त्ती रेखा कहीं भी ख़तम होती नही दिखायी पड़ती है।

❀ ❀

मेरे भाई कभी२ कहने लगते हैं, "आज तो आराम कर लो। व्रत और नियम पालन करते २ बहुत देर होगयी। अब तो गद्दोंपर लेटनेका मज़ा लूटो-आज तो स्वादु भोजन जी भरके उड़ालो—मज़ेदार गप्पे लगालो—कमनीय वस्त्रोंसे सज लो। तुमने कभी मोहनभोग नहीं खाया एकबार इसे तो ठहर कर चखलो। एकबार आनन्द मौज करनेमें क्या विगड़ जायगा। बहुत नियम पालना भी तो ठीक नही है। आजके मनोहर दिन तो ज़रूर एकबार आनन्द भोगलो—कुछ क्षणोंके

लिये यह सूखा रास्ता छोड़ यहां छायामें विश्राम करने आबैठो और इस रंगीली गोष्ठीका मज़ा लूटो" । परन्तु जब अपने ठिकानेपर पहुंचनेकी याद आजाती है तो ये मीठी २ बातें भली नही लगती—इनमें कोई रस नही आता। तब मैं अपने प्यारे भाइओंको कुछ उत्तर न.दे धीरे धीरे आगे पग धरता जाता हूं।

❀ ❀

त्योहार व खुशीका अवसर बड़ी सजधज और महान् समारोहके साथ आता है । सब ओर बड़ी चहल प्रहल है—शानदार चमक दमक है। वह आनन्द उल्लासका दिन आ पहुंचा है जिसकी बहुत दिनोंसे तैय्यारी और प्रतीक्षा हो रही थी। सब तरफ आनन्द प्रमोदका सामान और सब सजी हुई वस्तुयें यही कहती हुई दिखाई देती हैं "आओ आज आनन्द मौजमें लगजाओ, सब इन्द्रिओंको इसमें खुला छोड दो। और सब कुछ भूल जाओ, बस आनन्द" ।

पर हा ! आज तो यह काम और भी कठिन है। आज हम इसी तरह व्यर्थ समय कैसे गवां सकेंगे। आजके अपने पूज्य नायककी वा उच्चसिद्धान्तोंकी (जिस संबन्धमें कि यह दिन हम मनाने लगे है) याद आकर क्या हमे ऐसे काम करते हुवे बड़ा संकोच और भय न उत्पन्न होगा?। वह हमारा दिवगत पुरुषा अपनी संततिकी यह अवस्था देख रहा होगा। तब तो यह दिन इस प्रकार संयम-हीन और शिथिल होनेकी जगह और भी संभलकर चलनेका बन जाता है।

यदि यह विजयादशमीका उत्सव दिन है तो हमारे असुर-विजेता मर्यादापुरुषोत्तमका गंभीर और दीप्यमान यात्रा-वृत्तान्त स्मरण आ आकर हमें उस दिनके फजूल 'हाहा हूहू' मे सम्मिलित होनेसे वार २ रोकता है—उस प्रतापी दिव्य जीवनका क्रियात्मक उपदेश अन्दर कहींसे सुनाई दे देकर अपनी जघन्य दशाके लिये हृदयमे पुनः २ एक सच्ची व्याकुलता का अनुभव होता है। तब उस दिनके उपचारपूर्ण भोजनको मैं किसी प्रकार 'स्वादु' व 'उत्सव भोजन' समझ कर ग्रहण नही कर सकता। उस दिनका व्यर्थ समय खोना व्यर्थ समय खोना ही प्रतीत होता है, उसे 'आवश्यक कर्त्तव्यता' का चोला पहिना कर अपनेको धोखा नही दिया जाता। न जाने कहांसे बार २ अंकुश लगता है जो आगे चलनेको प्रेरित करता है और सचमुच विश्राम लेनेकी जगह उसदिन में अन्य दिनोंकी अपेक्षा एक आध पग अधिक ही चल लेता हूँ।

❀ ❀

हे भुवनपति! हे मेरे प्रभु! तुम बड़े दीनवत्सल हो। तुमने अपनी इस प्रजाकी इस तीर्थ यात्राके लिये बड़ा उत्तम प्रबन्ध कर रखा है। लोग मुझे योंही डराते हैं कि तेरा रथ बोदा है, और यह टूट कर थोड़ी देरमें यहीं ढेर हो जावेगा। परन्तु, हे करूणासागर, मुझे तो ख़बर मिलचुकी है कि जब कभी यह रथ चलता २ भग्न होकर गिर जायगा, तब मैं कोई निस्साधन नहीं रह जाऊंगा, अपनेको उस समय असहाय नहीं पाऊंगा,

किन्तु इस ब्रह्माण्डकलाके संचालक तेरे अदृश्य हाथ तत्क्षण ही मुझे एक नवीन तथा उत्तम रथसे समन्वित कर देंगे और इसी प्रकार मुझे रथ पर रथ मिलते चले जायंगे जब तक मैं अपनी यात्रा समाप्त कर अपने तीर्थ पर न पहुँच जाऊंगा। फिर मुझे चिन्ता करनेकी क्या जरूरत है? मैं क्यों यात्रा छोड़ इस रथकी फिकरमे लगजाऊं? कहीं ठहर कर इसे व्यर्थ सजाना या इसपर रोग़न करना शुरू करदूं? यह तो यात्रा करनेके लिये दिये हुवे जैसे हैं तुम्हारे ही रथ हैं। इनका तुम जो चाहो सो करो, तुम ही इनके मालिक और प्रेरक हो। ये सब तरह तुम्हारे हैं।

❀ ❀

मेरे स्नेही संबन्धिओं! तुम नाहकही मेरे पल्लेमें पूरी पकवान बाँध रहे हो। यह बोझा मुझे बेफायदा ही उठाना पड़ेगा। जरा देखो! स्वामी मे अविश्वास मत करो, जिसने निःसंदेह मेरे ही लिये मेरी यात्रा पथके दोनों ओर सर्वत्र फलोसे लदे हुवे वृक्ष पहिलेसे ही स्वयं लगा रखे हैं। यह मान लिया कि आप मुझसे बड़ा स्नेह करते हैं किन्तु क्या इसहीके बदलेमें आप मुझे रेशमी कपड़ोमें लपेटे डालते है और बटनों और बंधनों (टाई) से मुझे जकड़े देते हैं?

यह जो आपने मेरे हाथों और पैरोंमें गहने फंसा दिये हैं, क्या आपको विदित नहीं कि ये मुझे बोझल बनादेंगे और मेरे राह चलनेमें बहुत ही बाधक होंगे?

प्रिय बन्धुओं ! मुझे जिस राहपर जाना है वहाँके लोग तो मेरे इस स्वांगको देख मुझपर हंसी ही करेंगे, मेरी प्रशंसा नहीं करेंगे । इस आरोपसे मेरे रूपमें कोई सौन्दर्य्य नहीं आवेगा । कृपया, इन चीज़ोंको मुझपर मढ़कर मेरी शकल मत बिगाड़िये, मुझे अपने ही स्वरूपमें रहने दीजिये । मैंने जिस तीर्थ पर पहुँचना है उसकी पवित्र वेदीपर तो इन अमेध्य वस्तुओं को किसी प्रकार भी नही लेजाया जा सकता है । अतः मुझे ख़ाली हाथ ही वहाँ जानेकी आज्ञा दो । विश्वशासक प्रभुके प्रबन्धका अपमान मत करो । इस पाथेय आदि आडंबर के बिना ही स्वतन्त्रतासे मुझे यात्रा प्रारम्भ करने दो, और निज स्वरूपमें ही अपने अभीष्ट तीर्थपर पहुँचने दो ।

❀ ❀

मैंने निश्चयकर लिया है कि मैं अब राहमें चलता २ पक्षियोंके मधुर संगीतको सुननेके लिये कही नहीं ठहरूँगा । सुनूंगा पर इनके लिये ठहरूंगा नही । मैं रास्तेके मनोहर दृश्योंको यद्यपि बड़े ही आनन्दसेदेखूँगा, किन्तु इनके सौन्दर्य्यपर मुग्ध होकर कही पर खड़ा ही नही रह जाऊँगा । मैं फूलोंकी प्रिय सुगन्धके लिये सदैव ही अपनी नाक खुली रखूंगा, किन्तु उन सौरभमय फूलोंको अपने लिये तोड़ लानेकी इच्छासे कभी भी सड़कसे नीचे क़दम नहीं रखूँगा ।

मैं इन दूर फैले हुए मैदानोंकी हरियाली देख बहुत ही प्रमुदित होऊँगा, किन्तु वहाँके किसी सौन्दर्य्यका पीछा करनेके

लिये उनकी पगडंडियोंके कांटोंमें भटकनेको कभी नीचे नही उतरूँगा ।

मैंने निश्चय करलिया है कि यदि कोई मेरा परिचित स्नेही राहमें मिलेगा और मुझे कुछ प्रेमालाप करनेके लिये ठहरनेको कहेगा, तो मैं यह निवेदन करके कि 'मुझे मंज़िल पहुँचनेमें अबेर होती है' छोड़कर आगे चल दूँगा । अब मेरा बन्धु व सखा वही है जो कि मुझे आगे चलानेमें सहायक है ।

❀ ❀

भाइओ । जीवन पथके यात्रीको चैन कहाँ है ? बिना अपने घर पहुँचे हम भटके हुये बालकोंको शान्ति कैसे मिले ? । आओ दिन रात, उठते बैठते, चलते फिरते, सोते जागते हर समय कमर कसे रहें, हर समय जागते रहें, आगे बढ़नेको सदा सावधान रहें । यहाँ विश्राम और शान्ति ढूँढ़ना व्यर्थ है । पथिकको मार्गमें मज़ा और आनन्द कहाँ हैं ? । आ जाओ, बहुत देर हो चुकी, अब खेलना छोड़ दें और अपने घरकी तलाशमें अनवरत, अनथक परिश्रम करते हुए आगे ही चलते चलें, जब तक कि हम अपने घरकी पावनी ज्योतिर्मयी दिव्य भूमि पर न पहुँच जाँय, जहाँ अनन्त तेज, अगाध शान्ति, अम्लान चैतन्य और असीम आनन्द हमारा स्वागत करनेके लिये अनादि कालसे हमारी प्रतीक्षा कर रहे हैं ।

अदूरदृष्टि (MYOPIA)

आज कल जिधर देखे लोग ऐनक लगाये दिखायी देते हैं। इसका अधिकतर कारण 'अदूरदृष्टि' की बीमारी (Short sight या Myopia की बीमारी) है। इस बीमारीमें मनुष्यको दूरकी वस्तु नहीं दिखलायी देती। भगवान् जाने यह बीमारी दुनियाँमें सदासे चली आती है या आजकल ही पैदा हुई है, परन्तु यह सच है कि इस समय तो इस बीमारीसे ग्रस्त बहुत अधिक आदमी हैं। इस बीमारीमें ग्रस्त ऐसे भी बहुत से लोग हैं जो विचारे ग़रीब होनेके कारण ऐनक आदि नही लगा सकते और इसलिये अपनी इस बीमारी का प्रमाण नही देते फिरते।

एक पश्चिमी विद्वान्के कथनानुसार हमारे पूर्वज 'असभ्य' लोग तो इतनी दूर तक देखने वाले होते थे कि उन तारों और नक्षत्रोंको जिन्हें कि आजके 'सभ्य' लोग दूरबीनोंसे देख सकते हैं अपनी नंगी आँखोंसे देखा करते थे और नक्षत्रविद्याके सत्योंको जान लेते थे। इस दृष्टिसे हम विचार करें तब तो आजकल हम सभीको—जिन्हें ऐनककी जरूरत नही और जो

अपनी आँखोंको सर्वथा नीरोग समझते हैं–उनको भी 'अदूर-दृष्टि' (Short sight) की बीमारी है।

जैसे कि दूरकी वस्तु न दीखनेकी बीमारी होती है वैसे ही बारीक सूक्ष्म वस्तुके पाससे न दीखनेकी भी बीमारी होती है। इस बीमारीके प्रतीकारके लिये भी वैसे ही लोग बहिर्गोल ताल (Convex lens) की ऐनकें लगाते हैं या क्षुद्रवीक्षण (' खुर्दबीन) आदिका प्रयोग करते है।

❀ ❀

यह तो बाहिरी आँखों की बात हुई। परन्तु बाहिरी आँखोंकी। 'अदूरदृष्टि' (Myopla) का वर्णन करना मेरा विषय नही है। यदि बाहिरी आखें ही सब कुछ होती तो भक्त सूर-दास, विरजानन्द स्वामी और मिल्टन आदि जैसे अन्तः चक्षु पुरुष संसारमें क्रान्तदर्शी न हो गुज़रते। और हम भी तो अन्दरकी आँखोंसे जितना काम लेते हैं उतना बाहरी आँखोंसे नहीं लेते। हम अपना एक एक काम, एक एक चेष्टा अन्दरकी आँखोंसे देख कर करते हैं। अतः अन्दरकी आँखोंमें इस बीमारीका होना जितना हानिकारक होता है, और हो रहा है, उसका शतांश भी बाहरी आखोंमें होने से नही। तो जिन विचारोंकी अन्दरकी आँखे दूरतक नही देख सकती उनकी दशा बड़ी ही दयनीय है। और ऐसे अन्दरसे अदूरदर्शी लोगोंकी संख्या तो संसारमें और भी अधिक है। सारा दुःखग्रस्त और रुदन करने वाला संसार इसी अन्दरकी

अदूरदृष्टिसे ग्रस्त है। दूरकी बात नहीं दिखलायी देती इसी-लिये संसारमें सब रोना पीटना है। क्या कोई इस अदूरदृष्टिके लिये भी अञ्जन दे सकता है? ऐ ऐनकें देने वाले, बड़े 'साइनबोर्ड' वाले नामी डाकृरो! क्या अन्दरकी आँखके लिये भी तुम्हारे पास कोई ऐनक है? यही कहनेको जी चाहता है 'पहिले अपनी दृष्टि ठीक करलो, औरोंको ऐनकें और अञ्जन फिर लगाना'। अदूरदृष्टि कोई बाहिरी आँखोंमें ही नहीं हुआ करती। यह तो बड़ी गहरी बीमारी है। मैं तो आज असली (अन्दरकी) अदूरदृष्टि को इतना फैला हुआ देख कर घब-राया हुआ हूँ।

❀ ❀

जब मैं बालक था और चतुर्थ श्रेणीमें पढ़ता था तभी मैं कृष्ण पट्ट पर (ब्लैक बोर्ड पर) लिखे हुवे अक्षर नहीं पढ़ सकता था, क्योंकि मुझे बचपनसे ही इतनी अधिक अदूरदृष्टि-की बीमारी थी। किन्तु अपनी वह बाह्य बीमारी अब मुझे इतनी घोर नहीं मालूम होती जब कि मैंने अब यह जाना है कि मैं कामी इसलिये हूँ क्योंकि मुझे अदूरदृष्टि है, मैं क्रोधी इस लिये हूँ क्योंकि मैं अदूरदृष्टिसे ग्रस्त हूँ, मैं लोभी, घमण्डी और ईर्ष्यालु इसलिये हूँ क्योंकि मुझे दूर तक नहीं दिखलायी देता। मैं सब पाप इसी लिये करता हूँ क्योंकि मुझे दूर तक नहीं दिखलायी देता। मैं संसारमें बद्ध इसलिये हूँ क्योंकि मैं अदूरदर्शी हूँ। अब यह भी समझमें आता है कि शास्त्रोंने एक

स्वरसे 'अदर्शन' या 'अविद्या' को सब रोगोंका महारोग क्यों बतलाया है।

❀ ❀

नौजवानोंको दूरस्थ आने वाला बुढ़ापा नहीं दिखायी देता इसलिये वे जवानी भर बुढ़ापा लाने वाले कर्मोंमें लिप्त रहते हैं और पीछे पछताते हैं।

हिन्दुस्तानिओंको अपना देश नहीं दिखलायी देता। किन्ही को देश दिखायी देता है तो उसका भविष्य नहीं दिखलायी देता इसलिये वे विदेशी वस्त्र पहिनना या देशके लिये बलिदान करनेसे बचना आदि देश-विघातक कृत्योंको बड़े आराम और बेफ़िकरीसे करते चले जाते हैं।

अत्याचारीको अपनी आने वाली मृत्यु नहीं दिखलायी देती अतः वह उन्मत्त हो अत्याचार करता चला जाता है और किसी की कुछ नहीं सुनता।

प्राणीको अपना आत्मा नही दिखलायी देता, वह अमृतको अपने पास रखते हुए भी संसारके दुःखसागरमे डुबकियाँ खाता जाता है।

इस प्रकार संसारके सभी दुःख और दुर्घटनायें हम अपने ऊपर इसलिये लेआते हैं क्योंकि हम दूर तक नही देख पाते। इसका क्या किया जाय? विषयोंमे मस्त पुरुषको अपने कर्मोंका परिणाम नही दिखायी देता। अदानीको दान देनेमें धन का सर्वोत्कृष्ट सदुपयोग नहीं दिखायी देता। विद्यार्थीको पढ़ाई

में कुछ लाभ नहीं दिखलायी देता। भीरू को देशके लिये मरनेमें कुछ आनन्द नहीं दिखायी देता। आलसीको दूरस्थ परिश्रमका मधुर फल नहीं दिखलायी देता। अंधेको रूप नहीं दिखलायी देता। इसका क्या किया जाय? इसमें इनका क्या दोष? यह सब तो केवल दृष्टिका दोष है।

❀ ❀

जिसको जहाँ तक दिखायी देता है वह उसीके अनुसार और उसी सीमा तक शुभ कार्य कर सकता है, अधिक नहीं। और अन्तमें जिन्हें सब संसार, संसारका सब तत्त्व, दृष्टिगोचर हो रहा है वे ही संसारका सब आनन्द लूटे जा रहे हैं।

जिन भारतवासिओंको स्वदेश दिखलायी देता है वे दासताकी बेड़ियोंको तोड़नेके लिये व्याकुल हो उठ खड़े होते है और अनायास बड़ी २ तपस्या कर उतना ही पुण्यार्जन करते है। जिन्हें अपने सूक्ष्म २ दोष भी दीखते रहते हैं वे वेगसे दिनों दिन ऊपर चढ़ते जाते है। जिन्हें 'धर्म' या 'आत्मा' दिखलायी देता है वे सुगमतासे मुमुक्षुके पदको प्राप्तकर जाते हैं। महाबली षड्रिपु भी दृष्टिवाले सुजाखेके सामने नहीं ठहर सकते। भला जिसे व्यापक सुख दिखलायी दे रहा है उसमें 'काम' कैसे पैदा होगा? जिसे संसारको हिलानेवाला बल सर्वत्र दिखाई देता है उसे क्रोध क्यों सतायेगा? जिसे संसारका परम ऐश्वर्य अनुभव होता है वह लोभ किस वस्तुका करेगा? इसी प्रकार जिसे संसारव्यापक प्रेम, संसारव्या-

पक ज्ञान और संसारव्यापक आत्मा (अपनापन) दिखायी देता है उसमें मोह, मद और मत्सर नहीं पैदा होते। यदि इस तरह दृष्टि सब संसारको देखने लगे तो सब भय दूर हो जाते हैं, सब झगड़े मिट जाते हैं।

पर इतनी दूरदृष्टि, इतनी दिव्यदृष्टि प्राप्त कैसे होवे? अरे, कोई सच्चा हकीम (वैद्य) नेत्राञ्जन दे देवे कि जो सब संसार, सब लोकलोकान्तर (जो कि तारे नक्षत्र दीखते हैं) साफ़ २ दीखने लगे, अनुभव होने लगे। कोई कृष्ण (अपना मुंह खोल कर) हमारी आँखोंको दिखला देवे कि भविष्यमें क्या हुवा पड़ा है। आहा! आखें खुल जाँय। आँखोंका परदा हट जाय। दृष्टिको सर्वत्र गति हो जाय।

❀ ❀

फिर वह आँखोंका अञ्जन कहाँसे मिलेगा? बिना सद्गुरुके अन्तःचक्षुओंको और कौन खोल सकता है। यदि किसीको कोई मनुष्य-गुरु न मिलें तो भी कुछ डर नहीं, क्योंकि अन्तमें जो परमगुरु है वह तो एक २ मनुष्यको प्राप्त हुये हुवे हैं और जब चाहें मिल सकते हैं। परन्तु क्या बुद्ध, शङ्कर, दयानन्द, गांधी या किन्हीं अन्य गुरुने तुम्हारे आँखोंमें कुछ उजाला किया है? यदि किसीने भी किया तो केवल अब श्रद्धासे उनके पास बैठना (उपासना करना) ही शेष रहा है। उनसे मिला हुवा ज्ञानाञ्जन, दिनोंदिन हमारी आँखोंमें इस तरह ज्योति विकसित करता जायगा कि हम भी आंखें खुल जाने

पर कभी कृतज्ञता भरे भावमें गद्गद हो हृदयध्वनिसे गुरुका स्मरण कर सकेंगे कि—

आचरणसुधामय्या ज्ञानाञ्जनशलाकया,
चक्षुरुन्मीलितं येन तस्मै श्रीगुरवे नमः।

परन्तु यह सब श्रद्धासे ही साध्य है। श्रद्धाके बलसे तो शिष्य गुरुके ही नेत्रोंसे देख सकता है और एवं कभी इन पवित्र उपनेत्रोंसे मार्ग देखते और फिर नये ज्ञानाञ्जन सेवनसे अपने नेत्रोंको ज्योतिर्मय करते २ ही पूर्णदृष्टि प्राप्त हो जाती है। इसलिये श्रद्धा उपासनीया है। यदि सद्गुरु दीख गया है तो फिर अपने संपूर्ण आपेको उसे सौंप दो, बस फिर बेड़ा पार है, यही श्रद्धाका मतलब है। श्रद्धासे तो गुरु शिष्यके क्रीत (ख़रीदे हुवे) हो जाते हैं। श्रद्धासे ही भगवान् भक्तोंके आधीन हैं। यह केवल कहने को बात नही है। यह सच है। श्रद्धाको ही आँख खोलने वाला कहना चाहिये। जिस विचारेमें श्रद्धा नहीं उसे तो कोई गुरु ही नही मिलते और उसके अन्दर हृदयमें ही बैठे 'पूर्वेषामपि गुरु' भगवान् भी उससे बहुत बहुत दूर हैं। इसलिये मैं कहता हूँ कि श्रद्धा ही आँख खोलने वाली है।

❀ ❀

पर श्रद्धा आँख मींचनेसे होती है। बाहिरी आंखें मीचनेसे अन्दरकी आँख खुलती है। अच्छा होता कि हम अंधे होते। तब संभवतः हम श्रद्धाकी ही शरण लेते। अब भी तो हमें आँख मींचके जानबूझ कर अन्धा बनना पड़ता है। सब ख़राबी यही

है कि हम न तो पूरे अँधे हैं और न हमें पूरा दिखलायी देता है, किन्तु हमें थोड़ा २ दीखता है। जवानीकी उम्र इसीलिये बडी ख़तरनाक है। जवानीमें जब बन्द आँख खुलने लगती हैं तो वह बालकपनकी अपनी सहज श्रद्धाको छोड़ देता है और समझने लगता है कि मुझे सब कुछ दीखता है, अब मुझे माता पिता व गुरुकी क्या ज़रूरत। पर असलमें उसे बहुत थोड़ी दूर तक दीखता है। यह 'अदूरदृष्टि' की बीमारी जवानी (Young age) में ही हुवा करती है। डाक्टर भी इसमें साक्षी हैं। बुढ़ापेमें तो आँखों की दशा उलटी हो जाती है, तब दूरकी चीज़ दीखती है और पासकी नहीं दीखती। बुड्ढे लोग चिट्ठीको दूर रखके पढ़ते हैं, परलोककी या दुर पुराने ज़मानेकी बातें करते रहते हैं। उन्हें पासकी चीज़ कम दिखलायी देती है। ये बुड्ढे जवानोंको कोसते हैं और जवान (दूसरी तरहकी आँखोंकी बीमारीसे ग्रस्त हुवे) इन बुड्ढों पर हँसते हैं ; पर ये ही जवान जब बुड्ढे होते हैं तो उस समयके जवानोंको समझाने लगते हैं और वे जवान भी इनकी जवानीकी दशाकी तरह ही इनकी बातें नहीं समझते। इसी तरह यह आँखोंकी बीमारीका मारा हुवा अन्धा संसार लुढ़क रहा है! इसमें बिरले ही ठीक दृष्टिवाले हैं। इसलिये धन्य है वे जवान जिन्हें जवानीमें अदूरदृष्टिकी बीमारी नहीं होती क्योंकि बुढ़ापेमें भी उन्हें 'पास न दीखनेकी' बीमारी नहीं होती। धन्य हैं वे जवान जिन्हें जवानीमें श्रद्धा परित्याग नहीं कर जाती और इसीलिये

बुढ़ापेमें भी उनकी स्वस्थदृष्टि ठीक तर्क करने योग्य बनी रहती है। ऐसे स्वस्थदृष्टिवाले वृद्ध पुरुष ही संसारके सच्चे नेता होते है। और तो केवल अपने साथ औरोंको भी भटकाते रहते है। सच्चे नेताका लक्षण यही है कि जिसे अपनी जवानीमें 'अदूरदृष्टि' की बीमारी नही लगी, जिसने जवानीमें शिष्यता और श्रद्धाको नही छोड़ा। वह वृद्ध पुरुष सच्चा नेता है। वही गुरु है। वही स्वस्थदृष्टिवाला संसारको ठीक रास्ता दिखला सकता है।

❀ ❀

संसारके सब महापुरुष दूरतक देखने वाले हुवे है। उनकी दूरतक देखनेकी शक्तिने ही उन्हें स्वभावतः 'महान्' बनाया है। जो भविष्यको दूरतक देख सकते है वे इतने बड़े व्यापक कर्म करते हैं कि उतने भविष्यको वे अपने कर्मसे व्याप्त कर लेते हैं, अतः वे उतनी दूर तक जीवित बने रहते हैं। बुद्ध भगवान् आज भी ज़िन्दा हैं, त्रेता द्वापरके राम और कृष्ण आज भी जिन्दा हैं। इसलिये क्योंकि इन्होंने दूर तक देखा था और उसे कर्मसे व्याप लिया था। ये लोग और न जाने कब तक जीवित रहेंगे। इतना कहा जा सकता है कि ये वहाँ तक जीवित बने रहेंगे जहाँ तक कि इन्होने दृष्टिप्रसार किया था।

इसके विपरीत हम जैसे जो साधारण लोग हैं वे अपने आस पासके वर्त्तमानको ही देख सकते है (भविष्य दूरतक नही देख सकते और अतएव मुँह फेरकर भूत पर भी दूरतक

निगाह नहीं दौड़ा सकते)। वे जैसे तैसे अपने उस वर्तमानमें ही ज़िन्दा रहते हैं और आने वाला भविष्य उन्हें मार जाता है। इस तरह काल सब संसारको खाता जा रहा है। इसमें वे ही बचते है जिनकी दृष्टि दूरतक जाती है। यह ठीक है कि भविष्यके देखने वालोंको वर्तमान काल अपनी तरफ़से बड़ा कष्ट पहुँचाता है, परन्तु वह मुमूर्षु वर्तमान उन तपस्वियोंका क्या बिगाड सकता है? वह तो थोड़ी देरमें स्वयं ही अपनी मौत मर जाता है। और यद्यपि वर्त्तमानको ही देखने वाले आम लोग वर्त्तमानमें बड़े आनन्दसे रहते दीखते हैं परन्तु आने वाला कल उन भीरुओंको मार जाता है, वर्त्तमानके साथ वे भी समाप्त हो जाते हैं। इसलिये दूरतक देखना चाहिये। जितनी दूरतक होसके उतनी दूरतक देखना, सूक्ष्मतामें भी दूरतक देखना चहिये। काल यही कहता चला आ रहा है कि दूरद्रष्टा बनो। हे भारत वासियों! दूरद्रष्टा बनो, नहीं तो खाये जाओगे। हे मनुष्यों! हे समाजों और संघों! हे राष्ट्रों! अपने लक्ष्यको ऊँचा कर उतनी दूरतक देखो, अपने कार्यक्रम दूरतक देख कर बनाओ। दृष्टि को विशाल करो। यही ससारमें जीने की शर्त है। अमर होनेका मार्ग यही है। जो जितनी दूरतक देखेगे वह उतनी देर जीयेगे।

द्राघीयाँसमनुपश्येत पन्थाम्।

निराले आदमी

यह कौन है जो कि दिन दोपहर सोया पड़ा है? अब जब कि 'सभ्यता' का दोपहर चढ़ा हुवा है, सब अपने अपने कार्यमें ज़ोर शोरसे लगे हुए हैं, तब यह कौन एक तरफ चुपचाप पड़ा है? संसारमें तो सब तरफ चहल-पहल है, बाज़ार भरे हुए हैं, लोग अपने २ दफ़्तरों और कारखानोंमें कार्यव्यग्र हैं; एंजिन शोर कर रहे हैं, मोटर दौड़ रहे हैं, तार खटक रहे हैं. टेलीफोन बोल रहे हैं, एवं अन्य सैकड़ों प्रकारकी अचेतन मैशीने भी चल रही हैं (बल्कि लोगोंको चला रही हैं), तब यह कौन है जो कि एक तरफ निश्चेष्ट हो आंख मीच कर बैठा है?

कोई कहता है कि ये 'योगी' हैं और इनके पास इनके जागने की प्रतीक्षामें श्रद्धासे बैठ जाता है।

कोई कहता है कि ये 'महात्मा' हैं और इनके चरणोंमें श्रद्धापूर्वक प्रणाम कर चला जाता है।

कोई कह जाता है कि इन अकर्मण्य लोगोंने ही भारतवर्ष का नाश किया है।

कोई कहता है कि यह दुनियांमें व्यर्थ जीता है।

और कोई कहता है "ये निराले आदमी हुवा करते हैं। चलो आगे चलें"।

कोई इसे पागल समझकर छोड़ जाता है।

इस प्रकार भिन्न २ लोग अपनी दृष्टिके अनुसार ऐसे लोगोंको भिन्न २ भाव से देखते हैं और इनके भिन्न २ नाम रखते हैं। पर आओ, आज हम भगवद्गीताके शब्दोंमें सुने कि ये लोग 'संयमी' हैं और 'पश्यन् मुनि' हैं। "ये लोग संयमी होकर वहां जागते जहां कि अन्य सब लोग पड़े सो रहे हैं और पश्यन् मुनि (अर्थात् देखते हुए चुप, चेतन होते हुए—पूर्ण चेतन होते हुए भी—जडवत् बने हुए) होकर ये लोग वहां सोते हैं जहांकी सब दुनियां जागती है"

(१) या निशा सर्वभूतानां तस्यां जागर्त्ति संयमी।
(२) यस्यां जाग्रति भूतानि सा निशा पश्यतो मुनेः॥

परन्तु आश्चर्य यह है कि हम लोगोंको यह (दूसरी) पिछली बात ही दिखायी देती है कि ये सो रहे हैं जब कि हम जाग रहे हैं, किन्तु पहिली (मुख्य) बात नहीं दिखलायी देती कि जहां ये जाग रहे हैं वहां हम प्रगाढ़ सोये पड़े हैं। इसलिये व्यर्थ ही हम इनके सोने पर विस्मित या दुःखी होते हैं और उस लोकको जाननेका सौभाग्य नहीं पा सकते कि जिस उच्च लोकमें जागनेके लिये ये लोग इस लोकसे आंखे मीचे हुए हैं। हे संसारी पुरुषो! उस दिव्य-लोकको जाननेकी

इच्छा यदि तुम्हें कभी पैदा होगी तो याद रखो कि उसे पानेके लिये तुम्हें भी ठीक तरह सोना सीखना होगा और इन्हींकी तरह सोना होगा।

❀ ❀

अस्तु ! यह तो हुई पहिले दर्जेके निराले आदमियोंकी बात। इनकी लीला बहुत गहन है। हमारे लिये तो दूसरे, तीसरे दर्जेके मामूली 'निराले आदमी' ही निरालेपनमें काफी हैं। लक्षण सदा यही है कि जब सब सोते है तब ये जागते हैं और जब सब जागते हैं तब ये सोते हैं। देखिये। जब संसारी लोग रातके १२ बजे और दो तीन बजे तक नाटक खेल तमाशेमें जागते रहते हैं तब ये लोग 'पूर्वरात्रमें अधिकसे अधिक नींद ले लेनेके लिये' सोये पड़े होते हैं और जब ये संयमी लोग ब्राह्ममुहूर्त्तमें ईश्वराधनके लिये जागे होते हैं तब ये विषयी लोग सूर्योदयके पश्चात् तक भी पड़े सो रहे होते हैं। यह निद्रा—जागरणका एक अति स्थूल रूप हुवा। इसी तरह संसारी लोगका लड़कपन और जवानीके समय भर खेल और विषय भोगमें मस्त सोये रहते हैं जब कि सयमी पुरुष "ज्ञानोपलब्धि और शक्ति-संचय करता हुवा इस समय संयमपूर्वक जागता है। इत्यादि प्रकारसे हर कोई ज़रा सूक्ष्मतामें भी देख सकता है कि प्रत्येक ही क्षेत्रमें विपयी और संयमीका निद्रा जागरण उलटा है। किन्तु सब जगह ही ढूढ़नेसे इस उलटे निद्रा-जागरणका रहस्य यही मिलेगा कि संसारी पुरुष

विश्रामके समयमें (असली रात्रिमें) विषयों द्वारा सताया हुवा होनेके कारण अपने इन्द्रियोंके घोड़ोंको मार पीटकर चलाता जाता है (इसके बिना उसे चैन नही आती) जिससे कि ये घोड़े कार्यका समय आनेपर (असली दिनमें) इतने निर्जीव और वेदम हो चुके होते हैं कि बेवस सोजाते हैं और कार्य नहीं दे सकते। एवं सदैव ही ये संसारी लोग विश्रामके समयमें तो अपने आपको थकाते है और आगे बढ़नेके समयमें पड़कर सोते हैं, जब कि इससे विपरीत संयमी लोग विश्राम-के समय (रात्रि) विश्रामकर पुष्टि और शक्ति प्राप्त करते हैं और दिन आने पर उस शक्ति द्वारा कार्य करते हुवे आगे बढ़ते जाते हैं। इसी क्रमसे संयमी तो दिनोदिन ऊँचे चढ़ते जाते हैं और विषयी लोग इन्द्रियादिकोंको सताकर भी उसी जगह चक्कर लगाते हुवे वहींके वहीं रहते है। इस प्रकार दोनों का लोक दिनोंदिन बदलता जाता है, यहाँतक कि इसी धरती पर फिरता हुवा संयमी धीरे २ जिस उन्नत दुनियामें रहने लगता है उस दुनियाँका विषयी पुरुष स्वप्न भी नहीं ले सकता। अतः इस लोकमें जागने वाला विषयी तो उस लोकके लिये सुषुप्त सो रहा होता है और उसे बिलकुल न जानता हुवा सोरहा होता है, किन्तु उसलोकमें जागने वाला संयमी जो इस लोकके लिये सोरहा होता है वह देखता हुवा—जागता हुवा (पश्यन्)—सोरहा होता है, क्योंकि वह इसलोकको भी जानता

है। यह संयमी और विषयीके सोनेमें अन्तर है। इसीलिये उस उच्च दुनियाके लिये अज्ञानपूर्वक सोनेवाले विषयीका वह दुनिया नाश कर देती है, पर इस दुनियाके लिये ज्ञानपूर्वक सोने वाले संयमीका यह दुनिया कुछ नही विगाड़ सकती। तो फिर 'पश्यन्' होकर विश्रामके समय सोना और कार्यके समय संयमपूर्वक जागना यही 'निराले आदमी' का सूक्ष्म लक्षण है। जो कि इतना संयम कर सकता है कि कार्य कालमें चाहें कितने ज़ोरका, मस्त और मूर्छित कर सुला देने वाला निद्रावेग आवे पर वह सोवे नही (उस वेगको रोक सके), और जो विश्रामकालमें ऐसा देखता हुवा सो सके कि निद्रामें भी अपने आपको न भूल जाय (अपनेसे नीचे उतर कर सोवे, निद्राका राज्य 'आत्मा' पर न होने देवे) वही 'निराला आदमी' कहाने योग्य है। वही संयमी और पश्यन्मुनि है। अन्य लोग तो जो कि 'विषयी' होकर जागते हैं और 'जडमुनि' या 'मुग्ध मुनि' होकर वेहोश सोते हैं वे मामूली आदमी हैं। इन विषयी और जडमुनि लोगोंसे तो दुनिया भरी पड़ी है। क्या तुम इनसे निराला आदमीं नहीं बनना चाहते?

❀ ❀

तुम कहते हो कि आँखें खोलो और देखो, वे कहते हैं कि आँखे बन्द करो और देखो। तुम कहते हो कि 'आगे वढ़ो आगे वढ़ो, वे कहते हैं 'पीछे हटो और अपने असली केन्द्र पर पहुँचो'। तुम कहते हो 'अधिकार चाहिये, अधिकार', वे कहते

हैं कि जितना जल्दी हो सके 'अवलिताधिकार' होओ। तुम कहते हो 'गुणी बनो, गुणों का संग्रह करो', वे गुणोंके बन्धनों को छोड़ गुणातीत होते हैं। तुम कहते हो 'मिलो, मिलो, जितने अधिक आदमी मिले उतना अच्छा है', वे कहते हैं 'अकेले-बिलकुल अकेले-होओ, केवलता (कैवल्य) पाना ही मनुष्य का परमोद्देश्य है'।

तुम वीर्यकी अधोगति (नीचे गिराने) में आनन्द समझते हो, वे वीर्यकी ऊर्ध्वगति कर ऊर्ध्वरेता होकर ब्रह्मानन्दको प्राप्त करते हैं। तुम सदा अपना ही स्वार्थ देखते हो, वे सदा दूसरोंका हित देखते हैं; अथवा वे सदा आत्मा (अपने आप) को ही देखते हैं, और तुम अपनेको भूल सदा दूसरोंको ही देखते हो। तुम अनगिनत इच्छायें रखते हो, वे अपनी सब इच्छाये त्यागना चाहते हैं। तुम्हारी आवश्यकताये पूरी नहीं होने में आतीं, पर उनकी सब आवश्यकतायें ईश्वर पूर्णकरता है।

तुम जिधर जा रहे हो, वे उधरसे लौटे आ रहे हैं। तुम भोगको मीठा समझकर उसके पीछे पड़े हो, वे इसे फीका समझकर छोड़े बैठे हैं। तुम सुखकी तरफ दौड़ते हो, पर सुख तुम्हें मिलता नहीं, वे सुखको दुतकारते हैं और सुख उनके पीछे पूँछ हिलाता हुआ दौड़ा आता है। यही हाल लक्ष्मी, यश तथा सब ऐश्वर्यका है कि ये वस्तुयें उनके पास तो बिना बुलाये आती हैं, परन्तु तुम्हारी जिघृक्षा (पकड़नेकी इच्छा) से डर कर दौड़ती हैं।

तुम पश्चिमकी तरफ जाते हो, वे पूर्वकी तरफ जाते हैं। तुम कहते हो कि संसारका विकाश हुआ है, वे कहते हैं कि संसारका बडा ह्रास हुआ है। तुम कहते हो कि ये जो कुछ दिखायी देता है यही सब कुछ है, वे कहते हैं कि जो नहीं दिखायी देता वही सब कुछ है। तुम कहते हो कि संसारमें बिना झूठके काम नहीं चलता, वे कहते हैं संसारकी एक २ वस्तु सत्यपर आश्रित है। तुम कहते हो कि खानेसे आयु बढती है इसलिये खूब खाओ, वे कहते हैं खूब खानेसे आयु घटती है।

इस प्रकार यह निरालेपनकी कहानी बड़ी लंबी है। जितना कहता जाता हूँ उतनी बढ़ती जाती है। इसे और कहाँतक कहूँ ? बस इतना कह देनाही काफी है कि उनकी और तुम्हारी दुनियाही बिलकुल भिन्न है। इसलिये स्वभावतः उनकी एक २ बात तुमसे निराली है।

❀ ❀

ये निराले आदमी प्रायः सब कालोंमें ओर सब देशोंमें पाये जाते हैं। पर ये विशेषतया तब प्रकट होते हैं जब कि कोई क्रान्ति आनेवाली होती है। क्योंकि आनेवाली क्रान्तिके सत्य को ये लोग सबसे पहले अपने जीवनमें लाते हैं और अतएव अन्य लोगोंकी दृष्टिमें निराले आदमी नज़र आते हैं। अपने देशमें देखें तो रामके अति प्राचीन कालमें शायद ये निराले लोग 'वानर' बन कर पैदा हुए थे और कृष्णके कालमें 'गोप'

बने थे। बुद्धके ज़मानेमें ये 'भिक्षुक' बनकर पैदा हुये थे और शंकरके साथ 'परिव्राजक' बने थे। अभी दयानन्दके साथ ये "आर्य" बनकर हुवे और आज गांधीके साथ खद्दर पहनने वाले "सत्याग्रही" बन पैदा हुवे हैं।

पहले दर्जेके निराले आदमी वे होते हैं जो अपनी अतुल मनःशक्तिसे सूक्ष्म संसारमें क्रान्ति पैदा कर देते हैं। दूसरे दर्जेके निराले आदमी इस क्रान्तिको पकड़नेवाले होते हैं और इसे चलाते हैं तथा तीसरे दर्जे के लोग इसमें नानाप्रकारसे सहायता देते हैं।

निराले आदमीकी पहिचान क्रान्तिके प्रारम्भमें होती है। क्रान्ति जब हो चुकती है तबतो कुछ भी निरालापन नहीं रहता—नये प्रवाहमें सभी बहने लगते हैं। तबतो सभी अपने को 'बौद्ध' कहलानेमें अभिमान मानते हैं या 'अहं ब्रह्मास्मि' कहने लगते हैं। अबतो सब कही 'नमस्ते' सुनायी देती है और कुछ देरमें सभी दुनिया गांधीके अनुयायिओंसे भर जायगी। परंतु संसार जिन्हें 'निराला आदमी' देखता है और यह उपाधि देता है वे तो वे धन्य पुरुष होते हैं, वे शक्तिशाली ज़िन्दा पुरुष होते हैं जो कि क्रान्तिके प्रारंभके कठिन कार्यको करते हैं।

हे नारायण! यदि मुझे पैदा करना तो निराला आदमी बनाकर पैदा करना। यदि मैं पहिले या दूसरे दर्जेका भी निराला आदमी बननेके योग्य न ठहरूं, तो मुझे तीसरे दर्जेका

ही निराला बनाना, परन्तु मुझ द्वारा 'लकीर पीटनेवालों' की संख्या न बढ़ाना। नहीं तो न पैदा करना मेरी तो यही इच्छा है। हे निराले! मुझे तो निरालापन प्यारा है। दुनिया मुझे निराला कह कर चिढ़ावे यही प्यारा है। तेरी अखण्ड एक रसतामें जो अखण्ड निरालापन है मैं उसका उपासक हूँ। मुझे अपनी इस निरालेपनकी लीलामें ही खर्च करना।

ज्ञान की प्राप्ति

'पीत्वा पीत्वा पुनः पीत्वा, यावत् पतति भूतले।'

मनुष्य, ज्ञानरसको पीनेके लिये लोलुप हो उठता है और प्याले पर प्याले चढ़ाने लगता है। किन्तु कब तक? केवल थोड़े समयके लिए जब तक कि अशक्त हो भूमि पर अचेत नहीं पड़जाता।

सचमुच मनुष्यमें दम नहीं है, रस पीनेकी ऐसी उत्कट इच्छा, जी की, जीमे ही रह जाती है और वह ख़तम हो जाता है; तथा रससे भरा हुआ भांडा वैसाका वैसा ही पड़ा रह जाता है।

❀ ❀

न जाने हम किस अनादिकालसे अपने अज्ञान-शत्रुके विजय करनेमे लगे हुवे है। यद्यपि नये २ सिपाही अपने चमकीले नवाविष्कृत शस्त्रोंको ले फूले नहीं समाते और 'यह लिया वह जीता' करते हुवे गर्वसे सिर ऊँचा कर कह उठते हैं कि 'हम अज्ञान वैरीकी संसारमें छाया तक न रहने देंगे'। किन्तु थोड़ा सा भी अनुभवी योद्धा अपने इन ढीले कमजोर

हथियारोंकी असमर्थता जानने लगता है और हारकर मुंहसे यही निकालता है "हम भूलमें रहे, शत्रुकी तो ऐसी अनन्त सेना है जिसका जीतना हमारे हाथमें नही है।"

❀ ❀

ज्यों २ कोई जन इस महासमुद्रको तरता है, त्यो २ इसकी अपारता और दुस्तरता बढ़ती जाती है। जितना कोई इसके परलेपारके समीप जानेका यत्न करता है, उतना ही यह सहस्रों गुना अनुपातमें दूर होता जाता है।

तव इसमे आश्चर्य ही क्या है कि संसार जिसे पारंगत यः सिद्ध गोताख़ोर समझता है, वह अपने आपको वस्तुतः इस गम्भीर अविलोडित सागरके किनारेकी गीली कंकड़ियां ही चुगता हुवा पाता है।

❀ ❀

सचमुच ज्ञानकी उपलब्धिके लिये, हमारे ये दिन रातके अनथक घोर परिश्रम केवल इसी उद्देश्यसे हैं कि आख़िरकार हम जान सकें कि हमें कुछ भी ज्ञान नहीं है।

हमें ये दो दो आंखे इसलिए मिली है कि हम प्रत्यक्ष देखलें कि हम अन्धे है।

और चारों ओरकी चीजे हमें इसीलिये अपना रूप दिखा रही है कि हम समझले कि उनका वास्तविक आन्तरिक रूप कुछ और ही है।

❀ ❀

इस रात्रिमें हम अपने २ लैम्प, दीपक आदि जलाये बैठे हैं, (और बुझनेपर फिर २ जलाते रहते हैं) किन्तु इससे रात्रि नही मिट जाती। केवल दीपकके इधर उधर कुछ मलिन प्रकाश अवश्य हो जाता है, किन्तु शेष सपूर्ण अंतरिक्षमें तो वही अंधकारका अखण्ड राज्य है। यही हाल है और यही हाल रहेगा, हम चाहें कितने प्रतिभाशाली विद्युत् आदिके महालैंपों का ज़ोर लगाकर देख लें।

❀ ❀

हमारे बड़ेसे बड़े बुद्धि-दीपकका उजाला परिमित ही है। हम अपनी चार दिवारीके आगे लेशमात्र भी कल्पना नही कर सकते। चारों ओर कुछ दूर ही चलकर, उस काले पड़देका घोर अंधकार आजाता है जिसके पार देखना हम मनुष्योंके भाग्यमें नही है। तर्क-धनुर्धर उस अंधेरेमें बड़े गर्वसे अपने Search-light के तीर छोड़ २ कर लक्ष्यवेधकी आशा करते हैं, किन्तु वे तीर टकरा २ कर भ्रष्टलक्ष्य होकर लौट आते हैं, और वहांकी कोई भी ख़बर नही लाते, सिवाय इसके कि सामने एक अभेद्य कठिन काला पर्दा है जिसे हम बींध नहीं सकते।

❀ ❀

क्या फिर हमारे हृदयमें उस प्रकाशकी अभिलाषा निष्फल ही जाग रही है ?। क्या इस अंधेरी भूल भुलैयांसे निकलनेका कोई भी मार्ग नही है ?

नहीं, ऐसा कभी नहीं हो सकता। अवश्य कहीं न कहीं कोई प्रकाशमय महा-ज्योति विद्यमान है, नहीं तो बताओ कि किसकी आभासे हमारे दीपक अपने आपको प्रकाशित किया करते हैं और भला यह कैसे समझमें आसकता है कि जिस देवने हमारे अन्दर उस ज्योतिसे प्रेम पैदा किया है उसने उसकी प्राप्तिके लिए कोई रास्ता न खोल रखा होगा। तो निःसंदेह—विल्कुल निःसदेह—कुछ ऐसे सत्यनियम और विधियां हैं जिनके अनुसार फिरने और चक्कर लगानेसे हम इस भूल भुलैय्यांके बहिर्द्वारको पहुंच सकते हैं।

❀ ❀

धन्य हैं वे पुरुप जिनके लिये कि वेद-सूर्य सचमुच उदित होजाते हैं और उनके मार्गको सत्यके प्रकाशसे निर्भ्रान्त कर देते हैं। सौभाग्यशाली हैं वे पुरुष जिन्हें कि ऐसे सुजाखे गुरु मिलजाते हैं कि जिन्हें अपना बाहू पकड़ाकर वे निश्चिन्ततासे इस भूलभुलैय्यांके पार होजाते हैं। यदि मैं इन दोनों बातोंके योग्य न होऊं तो भी कुछ निराशाकी बात नहीं, अन्तमें एक आशा तो है ही कि यहांकी दीवारोंसे टकराते २ और असंख्यों वर्षों तक भूलते भुलाते कभी मुझे भी अकल आजायगी कि मार्गको जानकर प्रकाशको प्राप्त करूंगा। 'अनेकजन्मससिद्धिः ततो यान्ति परांगतिम्'।

❀ ❀

हम इस तमसावृत लोकमें कहांसे आये हैं और यहां ही

अपना कुटुम्ब पैदाकर, फैलाकर, बच्चों कच्चों सहित अब बस गये है तथा इसी प्रकार इन खेलोंमें समय विताते हुवे अपने आपको ख़तम कर डालते हैं।

किन्तु दूसरे कुछ स्वस्थ होकर उठते है और संसारकी चीज़ोंको अब देखना शुरू करते हैं तथा विस्मित होने लगते है। उनके लिये संसार खिलौनेके स्थानपर अब एक आश्चर्य्यकर वस्तु बन जाती है। किन्तु आगे २ अधिक अधिक आश्चर्यसे आंखें फाड़े देखते देखते उनका भी अन्तकाल आपहुंचता है और उनके विस्फारित नेत्र पथराये हुवे ही रह जाते हैं।

फिर तीसरी बार उठते है और अब पदार्थोंको गम्भीरतासे देखने लगते है। 'यह क्यों यह क्यों' करते हुवे 'तत्व' की खोजमें मग्न होते हैं। किन्तु इस रहस्यमय कार्यकारण-भाव को कौन जानता है, 'ऐसा क्यों हुवा' 'यह इसका गुण क्यों है' इन बातोंको कौन बता सकता है। हम भले ही 'यह अज्ञेय है' या 'यह इसका स्वभाव है' आदि शब्द रचकर अपने मनको संतोष दे ले; किंतु जिज्ञासुकी इससे तृप्ति नहीं होती। वे अपनी अल्पज्ञताको जान लेते और अपनी स्थितिको पहचान लेते है। ये ही है वे पुरुष जो उन सत्यनियमोंके जाननेकी तृष्णासे व्याकुल हो उठते है। किन्तु हा! उस जलकी तलाशमें इधर उधर विह्वल हो भटकते हुवे अन्तमें प्यासके मारे वे तड़फ तड़फ मर जाते है—और तृषाकी वेदना इस गहरी नींदमें भी व्यथित करती रहती है।

❀ ❀

किन्तु अभी फिर भी उठना है। और अबकी बार उठकर वह तपस्वी अपनेको योग्य पाता है। अब उसकी तृषाशान्तिका समय आगया है और वह इस सत्यज्ञानके रसको पीकर स्वस्थ और अमृत होकर इस भूलभुलैयाके जालसे मुक्त हो जाता है—और फिर इस जन्मके अन्धकारमें नहीं आता। सच है:—

"पुनरुत्थाय च वै पीत्वा पुनर्जन्म न विद्यते"।

घरका स्वामी

हम इस विशाल घरमें मुँदी आँखोंके साथ न जाने कहांसे आये। यहाँ ज्यों धीरे २ आंखे खुली तो नाना प्रकारके चामत्कारिक सुखभोगके समान पहिलेसे ही बड़ी तरतीबके साथ स्थान २ पर धरे हुवे हमने पाये और इन्हें हमने निःशंक भोगा। घरमें आये हुवे अन्य साथिओंके साथ इसी प्रयोजनसे तरह २ के संबन्ध जोड़े—अनेकोंसे घोर वैर किया तो अनेकोंसे गाढ़ मोह रक्खा, अपने मनमाने भोगमें बाधक जान बहुतोंको कष्ट दिया और सताया, तो बहुतोंसे हार खायी और पद-दलित हुवे। किन्तु अन्तमें फिर एक दिन आया जब कि आँखें एकदम मुँद गयी और हम यहाँका सब कुछ यही छोड़ न जाने कहाँ चले गये।

इस प्रकार हम इस घरमें आये और यहाँके ही पदार्थोंके संबन्धमें इतने झगड़े बखेड़े कर कराके जैसे ख़ाली हाथ और अंधे आये थे वैसे ही ख़ाली हाथ और अंधे चले गये, किन्तु यहाँ रहते हुवे यह कभी न जाना यह कभी न पूछा—कि यह घर है किसका, इन सब अनगिनत सामग्रिओं का स्वामी कौन है, यहाँ जो इतना सुख पाया वह किस स्रोतसे

प्रवाहित होता है, यहाँ जो दुःख भोगे उनका कारण क्या है। यह कैसी विचित्र अवस्था है कि हम विना जाने किसीके घर में, और न जाने कैसे, घुस आँय और फिर एक दिन विलकुल वेबस वहाँसे निकल जाँय किन्तु हमें अपने और उसके सबन्धमें कुछ भी मालूम न हो ? क्या यहाँ रहते हुवे हमें कभी आश्चर्य नही होता कि यह इतना विशाल [जिसमें हम जैसे असख्यातों जीव वस रहे हैं] और अद्भुत वैभवमय गृह किस ऐश्वर्यशाली का है ? क्या हृदयमें किसी अवसर पर भी प्रश्न नही उठता कि हम [जो यहाँ कुछ कालके लिये आये हैं] कौन है ? किसलिये आये हैं ? कहाँ जाँयगे ?

ये प्रश्न वास्तवमें प्रत्येक जीवसे पूछे जा रहे हैं। अन्दर बैठा एक 'यक्ष' प्रत्येक संसारवासी को सावधान कर रहा है और कह रहा है "घरके इस रमणीय सरोवरमेंसे जीवन (जल) ग्रहण करनेसे पहिले इन प्रश्नोंका उत्तर देलो, नहीं तो इन्हें विना बूझे भोगाहुवा जीवन (जल) 'अमृत' की जगह मार डालने वाला हो जायगा'। किन्तु यक्षकी आवाज़ कोई नहीं सुनता, सब यूँही इसे पी रहे हैं और मरते जारहे हैं। कुछ हैं जिन्हें कि ये प्रश्न सुनायी देते हैं किन्तु वे इनका अभी उत्तर नहीं दे सकते। और वहुत ही थोड़े ऐसे हैं जो कि इनको सुनते हैं और इनका ठीक उत्तर देकर इस सरोवरके अमृत (जल) को पीते है और मृत्युरहित होजाते हैं।

❀ ❀

हे घरके स्वामी। लोग मुझे कहते हैं कि 'अब तुम जवान होगये हो कुछ काम करो'। किन्तु मुझे तो अब बालकपनके खेलोंसे जागने पर तेरे इस संसार का यह गोरखधंधा ऐसा जटिल दीखता है कि कुछ भी समझ नहीं पड़ता। इसे विना समझे मैं यहाँके किसी 'काम' में कैसे हाथ डाल बैठूं? कैसे किसी भीड़ भड़केमें घुसकर कुछ हल्ला गुल्ला करने लगूँ? तुम्हारी विना आज्ञा पाये यहाँ की किसी वस्तुको कैसे छेड़ने लगूँ? इसलिये जहाँ तहाँ पता लगाता हुवा तुम्हारा ठिकाना पूछता २ आज तुम्हारी बैठकके दर्वाज़े पर आकर बैठा हूँ कि तुमसे भेंट करूँगा और आज्ञा लूँगा—पूछूँगा कि यह शरीर मन आदि संघात तुमने मुझे घरके किस विशेष कार्यके लिये दिया है। इससे पहिले मैं कैसे कोई 'काम' करूँ? और तुम्हें विना पूछे यहाँके ऐश्वर्यको भोगना, हा! यह तो मुझसे कभी न होसकेगा। इसलिये मैं तो जब तक कि तुमसे भेंट न हो जाय, तुम्हारा आदेश न मिलजाय (जैसा कि सुना है बहुतोंको मिल चुका है) तबतक तुम्हारी ड्योढी पर ही धरना लगाकर बैठा रहूँगा—मैं यही कार्य करूँगा। क्या यह 'काम' नहीं है?

हे स्वामी! जब कि यह सत्य है कि तुम्हें जान पहिचान लेने पर और सब कुछ स्वयमेव जाना जाता है और तुम्हें विना देखे यह दुनिया सचमुच अंधेरा कुँआ है और तुम्हें विना बूझे यहाँके ऐश्वर्य-जलको भोगना विषपान करना है तब तुम्हारे साक्षात्कारके लिये बैठना ही क्या सर्व श्रेष्ठ कार्य नहीं है?

हम क्या खायें ?

यदि एक विदेशी कपड़ेके व्यापारीको समझाया जाता है कि उसका यह पेशा पापमय है तो वह सच पूछता है 'फिर हम क्या खायें ?।' विदेशी सरकारके कर्मचारियोंको असहयोगका धर्म समझाया जाता है तो वे पूछते हैं, 'हम सरकारी नौकरी छोड़ दें तो क्या खाये ?' यहां तक कि भारतके नवयुवकोंको देशके लिये जीवन वितानेको कहा जाता है तो वे भी घबड़ाकर पूछते है दि यदि हम देश सेवामें हो लग जाये तो हम खायेंगे कहां से। यह खानेका सवालही हमें खाये जा रहा है।

❀ ❀

यह वात नहीं कि इस सवालका कुछ हल नही। असलमें इसका हल बड़ा ही आसान है। 'हम क्या खाये' इस प्रश्नका उत्तर है "यज्ञशेष"। यज्ञसे जो कुछ बचे उसे खाओ और तृप्त होवो। लो, खाने का सवाल हल हो गया।

पर यज्ञका शेष क्या होता है ? अपनी यज्ञीय (यज्ञ-प्राप्त) कमाईमेंसे यज्ञको उसका हिस्सा दे लेनेपर जो कुछ बचे वह यज्ञ शेष है। यज्ञ (जैसे राष्ट्रयज्ञ) हमारे वैयक्तिक जीवनोंका

भी जीवन होता है। अतः यज्ञके लिये उसका भाग न छोड़ कर यज्ञको भूखा मारना तो स्वयं पहले मरना है। और इसके विपरीत यज्ञशेष खाने द्वारा यज्ञको जीवित रखना, स्वयं सदा जीना है—अमर होना है। इसीलिये यज्ञशेषको अमृत कहा जाता है। जैसे 'यज्ञशिष्टामृतभुजो यान्ति ब्रह्म सनातनम्' यहाँ यज्ञशिष्टको अमृत कहा है।

यह यज्ञशेष खाना पुण्य है। और इसके विपरीत यज्ञका भाग भी न देना और उसे अपने लिये जोड़कर भोगना बड़ा पाप है। इस सत्यको सदा स्मरण रखनेके लिये भगवद्गीताके निम्न दो सुवर्ण वाक्योंका एक श्लोक तो हमें कण्ठस्थ कर लेना चाहिये।

(१) यज्ञशिष्टाशिनः सन्तो मुच्यन्ते सर्वकिल्विषैः

अर्थात् 'यज्ञशेष' खाने वाले मनुष्य सब पापोंसे छूट जाते हैं।'

(२) भुंजते ते त्वघं पापा ये पचन्त्यात्मकारणात्।

'वे पापी तो पाप (अघ) ही खाते हैं जो कि अपने लिये पकाते है (अपना ही पेट भरते है)।'

जहां यज्ञके शेषमें सब पापोंसे मुक्त करानेकी शक्ति है वहां यज्ञका ध्यान न करके अपना ही पेट भरनेवाला पाप का ही खानेवाला होता है। ऋग्वेदमें और भी स्पष्ट कहा है—

केवलाघो भवति केवलादी

अर्थात् 'अकेला खाने वाला केवल पाप खाता है'।

❀ ❀

परन्तु ऐसे यश भागको भी भोगनेवाले सेठ साहब या बाबू साहबको भोजन खाते देख कर आज यह कौन मानेगा कि वह भोजन नहीं खारहा है, पाप खा रहा है। हम लोगोंको तो यही दिखाई देता है कि वह पूरी पकवान और मिठाई मेवे खा रहा है। इस बातपर हमारी श्रद्धा जमे वा न जमे, पर इतना तो सत्य है ही कि किसी भी चीज़को निगल जानेका नाम 'भोजन खाना' नहीं है। यदि कोई कंकर मिट्टी और राखको भोजनकी तरह निगल जावे, तो निश्चय है कि इससे उसका शरीर पोषण नही होगा, और ये वस्तुयें भोजन नहीं कहलायेगी। इसी तरह पापकी कमाईसे प्राप्त भोजनाकार वस्तुयें भी भोजन नहीं है, क्योंकि उनसे भी पोषण नहीं प्राप्त होता। यह मान भी लिया जाय कि इससे शरीर पुष्टि हो जाती है, तो भी क्योंकि आत्मा कमज़ोर और निस्तेज होती जाती है, अतः यह शरीर (स्थूल-भाग) बढ़नेकी बीमारी है, पुष्टि नही है। जैसे शरीरमें केवल पेट बढ़ जाना बीमारी है, उसी तरह मनुष्यमें केवल स्थूल शरीरका अन्दरके शरीरोंकी अपेक्षासे बढ़ा होना बीमारी है। अत· ऐसा भोजन यद्यपि खाया जाता है तो भी यह भोजन नही है, यह पाप है। और इससे बना शरीर भी 'पापका पिण्ड' है। क्योंकि इसका असर शरीर पर हुवे बिना नहीं रह सकता।

❀ ❀

हमारे देशमें एक राष्ट्रयज्ञ चल रहा है (इसे स्वराज्य आन्दोलन रूपमें देखें या राष्ट्रनिर्माण कहें या कुछ और) जो कि हमारे ज़िन्दा रहनेके लिये आवश्यक है। इस कार्यमें सहायक जो जो संगठन हैं वे भी यज्ञ हैं। सच्चे धर्मको जीवनोंमें लाने वाली और प्रचार करनेवाली सब संस्थाएं यज्ञ हैं। इन यज्ञों-को खिला कर खाना—इनके लिये सब कुछ देकर फिर जो अपने हिस्सेमें बचे उसे खाना, यज्ञशेष खानेका धर्म है जो कि प्रत्येक भारतवासीको पालना चाहिये। हमें पाप खानेवाले 'चोर' नही बनना चाहिये। जो लोग यज्ञको भुलाकर, अन्य लोगोंका विचार छोड़कर अपनेको ही देखते हैं और इसलिये अन्योंका हिस्सा भी खाजाते हैं, उन्हें गीतामें 'चोर' भी कहा है।

तैर्दत्तानप्रदायैभ्यो यो भुङ्क्ते स्तेन एव सः।

अर्थात् 'उन (यज्ञदेवों) से दिये हुवे (पदार्थोंको) उन्हें बिना दिये जो भोगता है वह चोर ही है'। चोर ही नहीं, किन्तु यदि और गहराईमें जाकर देखें तो भगवान् हमें ऋग्वेद द्वारा कहते हैं।

'सत्यं ब्रवीमि वध इत् स तस्य'

(० १०. ऋ११७.६)

'सत्य कहता हूँ कि वह (धन) उस (त्याग न करनेवाले) की मृत्यु है।' परन्तु सब बात तो यही है कि हमलोग यज्ञ-भागके न त्यागनेको अपनी मृत्यु कहां समझते हैं, हम तो इसे चोरी भी कहां समझते है। मनुष्यको ऊपरसे देखने पर

यह बात सच नहीं प्रतीत होती है कि मेरा पाप-धन मेरा वध (मृत्यु) है, इसीलिये तो वेदको भी कहना पड़ा है 'सत्यं ब्रवीमि'। मैं सच कहता हूँ, इसे सच मान। यद्यपि यह तुम्हारी भोगसामग्री ही दिखायी देती है, पर सच यह है कि यह तुम्हारी मौत है।

तो क्या अब समझमें आया कि हम भारतवासियोंको क्या खाना चाहिये? क्या यज्ञको चोरी करके खाना चाहिये? क्या हमें पाप खाना चाहिये? क्या हमें मृत्यु बुलानी चाहिये अथवा 'अमृत' खाना चाहिये?

❀ ❀

पर वे कहते हैं 'इससे खानेका सवाल तो हल नहीं हुवा। इन (Idealistic) बातोंसे तो पेट नहीं भरेगा। पेट भरनेके लिये तो कहीसे खाना होगा। भूखकी चिन्ता जब लगी होती है तब पाप और पुण्यकी सुध कुछ नहीं रह सकती।' इस बातको विश्लेषण कर यदि ठीक २ कहा जाय तो असलमें यों कहना चाहिये कि खानेका सवाल तो हल हुआ हुआ ही है परन्तु आवश्यकतासे अधिक खानेका सवाल बेशक हल नही हुआ है, (और न हो सकता है और न होना चाहिये)। हमारी बहुत सी अस्वाभाविक भूखें बढ़ी हुई है। हमें भूख प्रतीत होनेका 'भस्मक' रोग हो गया है। यज्ञशेषके थोड़ेसे भोजनसे हमारी ये अस्वाभाविक भूखें पूरी नही होंगी। यही असलमे डर है जो कि हमें सता रहा है,

सच्ची भूख हमें ऐसी नहीं सता रही है। और ये आदर्शवादकी (Idealistic) बातें हमारे हृदय तक नहीं पहुँचती हैं इसीलिये हमें यह वास्तविक (Realistic) नहीं जंचती हैं। परन्तु जब ये बातें हमारी समझमें आवेंगी, हमारे हृदयमें अनुभूत होंगी, तब हमारे मन इतने स्वच्छ हो जायगे कि हमसे ये हमारी झूठी भूखें स्वयमेव हट जायंगी और असली स्वाभाविक भूख चमकेगी। हम अपनेको भारतवासी समझ कर स्वेच्छासे गरीबीका जीवन व्यतीत करते हुवे बादशाहकी तरह रहनेको उद्यत होंगे। यही स्वाभाविक भूखका लक्षण है।

परन्तु सब बात तो यहाँ अटकती है कि ये Idealistic बातें समझमें कैसे आवें? इन्हें मैं और किस तरह समझाऊँ? वेद और गीताके क्रान्तदर्शी वचनोंको सुनानेसे बढ़कर मुझ पामर के पास और क्या शक्ति है जिससे कि इसे समझा सकूँ? मैं तो बोल सकता हूँ, चिल्लाता हूँ, और चिल्ला २ कर कहता हूँ कि यज्ञशेषसे अतिरिक्त खाना पाप है, चोरी है, अपना नाश है।

❀ ❀

कहते हैं कि गुरु नानकदेवके पास एक बार दो मनुष्य भोजन लेकर आये। उनमेंसे एक बड़ा साहूकार धनाढ्य था जो कि बड़ा बढ़िया हलुवा पूरी का भोजन लाया था, और दूसरा एक ग़रीब था जो कि अपनी रूखी सूखी मोटी रोटियाँ लाया था। परन्तु नानकदेवने इस ग़रीबका भोजन ही स्वीकार किया। विनती करने पर उस अमीरको उत्तर दिया कि तेरा

भोजन खूनसे भरा हुआ है। आगे कहानी है कि अन्तमें गुरु साहिबने दोनोंका भोजन मुट्ठीमें लेकर निचोड़ा तो उस अमीर के भोजनमेंसे खून चुआ और उस ग़रीबके भोजनमेंसे दूध निकला।

हे भारतवासियो! क्या वर्त्तमान कालके सन्तोंने तुम्हें निचोड़ कर नहीं दिखला दिया है कि खूनभरी कमाई कौनसी है और अमृतभरी कमाई कौनसी है और कितनी है? अब क्या प्रतीक्षा है? यदि अशक्त मैं निचोड़ कर नहीं दिखला सकता हूँ तो क्या यह समझ लोगे कि हमारी पापकमाइयाँ 'खूनसनी' नहीं हैं। ज़रा देखो सन्तोंने एक वार नहीं कई वार निचोड़ निचोड़ कर साक्षात् करा दिया है कि विदेशी वस्त्र वेच कर कीगई कमाई, शराब वेचकर की गई कमाई, गरीबोंसे धन चूसकर की गई कमाई, अर्थात् राष्ट्रयज्ञका घात करके की गई प्रत्येक कमाई लहूसनी है, पाप है, मृत्युका द्वार है?

❀ ❀

क्या ये बातें अब भी वास्तविक (Realistic) नहीं हुई हैं? क्या दादाभाई, दत्त, गोखले, तिलक और गांधी आदि सन्तोंने तरह २ से यह स्पष्ट नहीं दिखा दिया है कि भारतवर्ष का देह वहुतसे वर्षोंसे एक यन्त्रकला (Machinery) द्वारा चूसा जा रहा है। यह तो इतना स्पष्ट दिखलाया गया है कि बहुतसे निष्पक्ष विदेशी भी (अंग्रेज़ भी) खून निचुड़ता हुआ देखरहे हैं। तो क्या उस यन्त्रकलाके कारण होने वाली कमाई

'खूनसनी' कमाई नहीं है। एक देशके खूनको इससे अधिक प्रत्यक्ष रूपमें और क्या दिखलाया जासकता है।

यदि यज्ञभाग चुरानेकी दृष्टिसे देखे तो हर कोई जानता है कि हमारे देशमें अपने धनको यज्ञसे बचानेवाले 'स्तेन' कितने अधिक हैं और यज्ञशिष्टामृत-भोगी कितने विरले हैं। इस प्रकार जो हम (यज्ञकी) सबकी सामुदायिक संपत्तिको न बढ़ाकर एक दूसरेकी संपत्ति चुरानेमें लगे हुवे हैं क्या यही कारण नही है कि हमारे देशका सब जीवनरस चुपके २ चुराये जानेका बड़ा पाप बड़ी आसानीसे हो रहा है। पापको इससे अधिक आंखोंके सामने प्रत्यक्ष क्या दिखलाया जासकता है।

और इस मरते हुवे (यहाँके लोगोंके शरीर नष्ट हो रहे हैं, मनकी शक्तियाँ बिगड़ गयी हैं और आत्मिक शक्तिका भी दिनों दिन ह्रास होता गया है) देशको देखकर क्या यह समझने के लिये कि यह यज्ञभागको भी खा खा कर बुलायी गयी मृत्यु-का लक्षण है, किसी ऋषिके उतरने की ज़रूरत है? और क्या अब भी अपने देशकी निस्तेज निश्चेष्ट और मुर्दोंकी सी अवस्था देखकर स्वयमेव ही कानोंमें गूँजने लग पड़ने वाला यह वेद-वचन 'सत्यं ब्रवीमि वध इत् स तस्य' अपने अर्थको वास्तवमें वास्तविक (Realistic) करनेमें असमर्थ रहता है?

इसलिये इन बातोंको तो आदर्शवाद (Idealism) कह कर टालना उचित नही है, अपनी अस्वाभाविक झूठी भूखोंको हटा देना ही उचित है।

❀ ❀

यह भी समझ लेना चाहिये कि इन झूठी भूखोंकी पूर्त्ति हम इस समय यदि करना चाहें तो भी नही कर सकते हैं। क्या तुम्हें मालुम है कि हमारे देशकी औसत आमदनी क्या है? उदारतासे हिसाब करें तो भी ४) माहवार पड़ती है। यह भारतवासिओं की आमदनी की औसत है। ४) से कम कमाने वाले भी करोड़ों आदमी है। तो जब तक यह औसत आमदनी नही बढ़तीं तब तक (सिवाय इसके कि हम आपसमें ही एक दूसरेकी चोरी करें) ४) से अधिक कहाँसे खा सकते हैं? ४) में हम क्या क्या करेंगे? तो भूख बढ़ानेसे क्या लाभ? सच पूछो तो इस दृष्टिसे प्रत्येक भारतवासी का यज्ञशेष ४) से अधिक नहीं है। एक अस्तेयव्रतका पालने वाला यदि आज ईमानदारी से कमाकर ४) माहवारसे अधिक प्राप्त करता है तो वह सब अधिक धन उसे देशके कार्यमें ही लगा देना चाहिए और ४) में अपना गुज़ारा करना चाहिये। फिर जो बेईमानीसे खूनसनी कमाई करते हैं उनका क्या कहना है! अपनी दशा जानने वाला कितना दुःखी होता है जब कि भारतके नवयुवक (कुछ लोगों को ज़्यादा भोगते देख कर) स्वयं अपने लिये २०) २५) ४०) तक व्यय करते हुवे भी अपनेको ग़रीब समझते है। भाई! इस हतभाग्य देशमें तो ग़रीब वह हैं जो कि ४) माहवारसे भी कम आमदनी कर पाता है। इसलिये भारतपुत्रोंको चाहिये कि वे अधिक भोगने वालोंका विचार न करें, उनकी रक्तरंजित

पापकमाई पर दृष्टिपात न करें, किन्तु अपने सीधे सादे आवश्यकीय भोजनको अमृत समझ कर खायें, तभी यह देश 'वध' से वच सकता है। इसीलिये देशभक्त तो अपने आप (अपने तन मन धनसे) देशके लिये ही विक जाते हैं और फिर जो कुछ शरीरधारणके लिये मातासे मिलता है उसे खाकर काम करनेके लिये जीते हैं। इसके सिवाय इस समय इस देशमें धर्मपूर्वक जीनेका और कुछ उपाय नहीं है, और कुछ उपाय नहीं है।

❀ ❀

भारतदेशके जीवनरसको चूसने वाली 'विदेशी राज्य' के रूपमें जो एक वड़ी मैशीनरी चल रही है, उसमें साधारणतया थोड़े वहुत सहायक तो शायद सभी भारतवासी कहे जासकते हैं, परन्तु विशेषतया विदेशी कपड़ोंके व्यापारी और पहिनने वाले, मुक़द्दमेवाज़ और वकील, सरकारी नौकर और वड़े २ तालुकेदार आदि जाने अनजाने इस रक्तशोपक यन्त्रके अङ्ग वने हुये हैं। यन्त्रके अङ्गभूत ये हमारे भाई अपने खानेका सवाल हल करनेके लिये ही नीचेके लोगों का खून चूसते हैं, और उस मेसे कुछ अपना भाग पाकर इस चूँसको ऊपर पहुँचा देते हैं। इस प्रकार दिनरात यह यन्त्र चल रहा है और इस देश-देहके कोने कोनेसे रुधिर खिच २ कर वहिर्गत हो रहा है। इस शोपणसे यहाँके लोगोंका केवल धन नहीं छिन रहा है किन्तु इसके साथ २ भारतपुत्रों के वैयक्तिक शरीर दुवले होरहे हैं,

मन निर्वीर्य और दास होते जा रहे हैं तथा आत्मिक धन भी दिनों दिन लुप्त होता गया है। इस शोषणप्रक्रियाको देख लेने पर हृदय स्तब्ध हो जाता है; जी चाहता है कि इससे तो इस देशका एकदम मर जाना अच्छा है। पर न तो यह शोषण-चक्र बन्द होता है और न इस शरीरकी समाप्ति होती है। इस चक्रको चलता देखकर भी क्या कोई इस वास्तविकतासे इन-कार कर सकता है कि इस देशके हज़ारों लाखों आदमी पाप ही खा रहे है भोजन नही खा रहे हैं। यह पाप भोजन ही तो कारण है कि जिससे यह पापचक्र अभी तक शानके साथ सिर ऊँचा किये चलता जा रहा है।

❀ ❀

परन्तु आख़िर संसार पर 'दीनोंकी आह सुनने वाले' का राज्य है। इसलिये इस देशमें कुछ ऐसे धीर पुरुप भी है जो कि इस जटिल और अदृश्य प्रतीत होने वाले पापचक्रके मुकाविले-में अपना यज्ञ संगठित कर रहे हैं, और इसे अपना सर्वस्व अर्पण कर चला रहे हैं। यह दृश्य एक वार प्रत्येक भारतवासीको दीख जाना चाहिये कि किस तरह एक तरफ़ अमृत-भोगी थोड़ेसे लोग अपने जीवनप्रद यज्ञसे भारतको जीवित करनेपर तुले हुवे हैं, जब कि शेप सव लोग यज्ञको छोड़ उस पापचक्रके अधीन 'अघायु' और 'इन्द्रियाराम' जीवनवाले इस देश-शरीरका मृतभाग बनकर पड़े हुवे हैं और आकाशमें कोई गीताकी वाणीमें बोल रहा है—

एवं प्रवर्त्तितं चक्रं नानुवर्त्तयतीह यः ।
अघायुरिन्द्रियारामो मोघं पार्थ स जीवति ॥

गी० ३—१६

"इस प्रकार चलाये हुवे इस यज्ञ चक्रको जो (यज्ञभाग देने द्वारा) नही चालू रखता है, वह अघायु अर्थात् जिसका कि जीना ही पाप है और इन्द्रियोंमें रमने वाला मनुष्य, हे अर्जुन ! व्यर्थ ही जीता है।"

जिनका कि जीना व्यर्थ है ऐसे हम अर्धमृत लोगोंको प्रकृति अधिक देर तक भूमिका भार नही रहने देगी। इसलिये इस श्लोकका मतलब वही है जो कि 'वध इत् स तस्य' यह वेदवचन बतलाता है। हम मृत्युकी तरफ क्यों न जायें जब कि हमारा जीना ही पाप हो गया हो, हम अघायु हो गये हों। निश्चयसे हम गुलामोंका जीना ही पाप है। जितनी देर जी रहे हैं संसारमें पाप बढ़ा रहे हैं। हम गुलाम हैं और जी रहे हैं, इसीलिये हिन्दुस्तानी सिपाहियोंने चीनके विद्यार्थिओंपर गोली चलायी है या चलानी पड़ी है। अन्य कई देशोंको पराधीन रखने या हक छिनानेमें हमारी गुलामी साधन होती रही है। हमारा इस गुलामी जिन्दा रहना संसारमें इतना पापका कारण होरहा है कि बहुतसे पीड़ित लोग कह उठते होंगे 'यह व्यर्थ ही जी रहा है' और हमारी मृत्यु मनाते होंगे।

परन्तु हम अघायु इसलिये होगये हैं क्योंकि हम 'इन्द्रियाराम' है। इन्द्रियोंकी भूखें हमें सता रही हैं अतः यज्ञशेषके

शुद्ध सात्विक भोजन पर हमारा गुज़ारा नहीं होता और हम यज्ञभाग खानेके पापमें प्रवृत्त होजाते है। इसलिये खानेके सवालका हल यह है कि इन्द्रियोंमें रमना छोड़दो, अस्वाभाविक भूखोंको मिटादो। फिर शेष स्वाभाविक भूखकी निवृत्ति तो वड़ी आसान है। यह सर्वथा सत्य है कि जो पशु पक्षियों को रोज खानेको देता है (जो भारतके ही लाखों नरकङ्कालोंको जीवित रखता है) वह तुम्हारा पेट भी भरेगा। इसीलिये मैं कहता हूँ कि खानेके सवालका हल वड़ा आसान है। केवल पेचीदगी यह है कि हमें इन्द्रियोंकी भूखें लगी होती हैं। ये ही भूखें है, जो कि इस इतने आसान सवालको कठिन वना देती है।

❀ ❀

और इन अस्वाभाविक भूखोंको तो एक संकल्पसे, एक हार्दिक अनुभवसे हटाया जा सकता है। यही समझमें आना कठिन है कि हम भारतवासियोंको इस समय अस्वाभाविक भूखें लग कहांसे सकती हैं। जिस देशमें कि अपने करोड़ों भाइओंको एक वक्त ही खाना नसीव होता हो, जहां कि करोड़ों भाई चार पैसे रोज़पर गुज़र करते हों और एक दुष्काल आनेपर मृत्युके ग्रास होजाते हों, उस देशके लोगोंको क्या अतिरिक्त भोजनकी सूझेगी? तुम कहते हो कि इन Idealistic वातोंसे पेट नहीं भर सकता, पर मैं पूछता हूँ कि दुर्भाग्यसे तुम्हारे किसी प्रियका कभी अचानक देहान्त होजाता है, तव तुम्हारी भूख कहां चली जाती है? तव तुम्हारा पेट किस तरहसे भर

जाता है। रिवाज तो यह है कि जब तक मोहल्लेमें लाश पड़ी रहती है तब तक किसीके घर चूल्हा नहीं चढ़ता। तो आज इस श्मशान बने हुवे अपने भारत देशमें हमारे लिये भूख लगाने वाली चीज़ कौनसी है? क्या अपनी वर्तमान दशाका स्मरण हमारी भूख रोकनेको पर्य्याप्त नहीं है? ज़रा अपनी स्वदेशमाताका सच्चा स्वरूप देखो। गुलामीकी हालत, सदा पैरों तले रौंदे जानेकी हालत, इस समय क्या भोगोंकी इच्छा पैदा होगी? क्या इस समय तुम इन्द्रियाराम बन सकोगे?

यह भी एक बड़ा भ्रम है कि जीनेके लिये खाना सदा आवश्यक है। कई वार तो भोजन विष होता है। महात्मा गांधीने २१ दिन वाला उपवास करके बतला दिया कि ज़िन्दा रहनेके लिये भी खाना छोड़ा जाता है। उन्होंने उपवासके बाद कहा 'यदि मैं यह उपवास न कर लेता तो मै ज़िन्दा न रह सकता'। यह कुछ विचित्र बात नहीं है। ऐसे बहुत लोग मिल जायेंगे जिन्हें कि उपवासने मरनेसे बचाया है। इसलिये इस समय भारतका जीवन भी भोग-त्यागमें ही है, यह जान कर एक दम ही सब झूठी भूखोंका बहिष्कार करदो।

❀ ❀

हे भारतके नवयुवको! (विशेषतया राष्ट्रिय विद्यालयोंके स्नातक भारतपुत्रो!) अब देर लगानेका समय नहीं है। अपनी आवश्यकतायें कम करके यज्ञमें लग जाओ। इस प्रवर्त्तित यज्ञचक्रको चलाते चलोगे तभी यह भारी पापचक्र

बन्द हो सकेगा। यह तुम्हारा काम है। इसलिये लहूसने, देश को मृत्युकी तरफ़ लेजानेवाले, पापभोगोंकी तरफ़ कभी दृष्टि न उठाओ। यदि कभी उधर दृष्टि चली जाय तो देशकी दशाका चिन्तन करलो। अपनी दुखिया माताके रक्तशोषणका ध्यान आते ही सब झूठी भूखें मिट जाया करेंगी। यह याद रक्खो कि विदेशी शासनके इस पापचक्रका उद्घोषित उद्देश्य है कि एक एक भारतवासीको ग़रीब बनाते बनाते हमें 'लकड़हारे और पानी भरनेवालोंकी कौम' बनाकर नाश कर दिया जाय। इसका स्पष्ट एक ही इलाज है कि हम स्वेच्छासे ग़रीब बनकर इस देशको ज़िन्दा करदे। स्वेच्छासे करनेमें ही सब भेद है। संसारसे ज़बरदस्ती छुड़ाया जाना मृत्यु है, किन्तु संसारको स्वेच्छासे छोड़ना 'संन्यासी' पद प्राप्त करना है। जब ज़बर दस्ती ग़रीब बनाये जाकर मरना है तो स्वेच्छासे ग़रीब बन कर जिन्दा क्यों नही बन जाते। पापचक्र द्वारा ग़रीब तो सब बनाये ही जारहे हैं (जो आज नही है कल हो जायेंगे) तो पापविरोधी पुण्य यज्ञचक्रको चलानेके लिये आवश्यक ग़रीबी को ही क्यों न स्वेच्छासे स्वीकार कर लिया जाय।

इसलिये अब यह मत पूछो कि हम क्या खायेंगे। इससे निश्चिन्त होकर पापनाशक यज्ञमें लग जाओ। शेषके रूपमे जो कुछ रूखा, सूखा, चनाचबेना मिले उसे अमृत समझकर खाओ। यह पवित्र भोजन तुममें बल वीर्य और ओज पैदा करेगा। और यदि कभी यज्ञशेष कुछ भी न मिल सके ऐसा हो,

तो भी कुछ परवाह नहीं है। उस अवस्थामें बेशक भूखे मर जाना, पर इस पवित्र व्रतको न मरने देना और लहूसनी कमाईका ख्याल तक न करना। परन्तु अब तो तुम्हें भूखे मरनेका सौभाग्य कहां मिल सकेगा। अब वह शुभ ज़माना तो बीत चुका। नीवकी खाईमें अपने आपको भरनेवाले भरकर माताकी गोद प्राप्त कर चुके। वह प्रारम्भ करनेवालोंका ज़माना था, वीरोंका ज़माना था, बिना जाने हुए चुपचाप बलिदान होनेका ज़माना था। वह प्रायः बीत चुका। अब तो यश इतना बढ़ चुका है—इतना वितत हो चुका है कि लोग तुम्हें ज़रा भी देशका सेवक देखेंगे तो तुम्हारी प्रतिष्ठा करेंगे, तुम अपनी आवश्यकतायें नहीं बतलाओगे तो भी वे उन्हें जान कर पूरा करेंगे। पर ऐसे कुछ क्षेत्र अब भी हैं जहांकी नीवें भरनेकी आवश्यकता है। यदि बहादुर हो तो उन क्षेत्रोंमें जाकर अपने 'अमृतभोजन' का बल दिखलाओ और अपना भारतजन्म सफल करो। इस देशके उद्धारके सभी कार्योंके चलानेके लिये आवश्यक है कि यहांके नवयुवकोंकी एक भारी फौज इतनी कम आवश्यकताओं वाली बन सके कि उसके सामने खानेका सवाल कभी न ठहर सके। यह देशकी एक भारी आवश्यकता है जिसको कि बिना पूरा किये आगे बढ़ना असंभव है। और यह एक सत्य है जिसके कि सामने तुम्हें अवश्य अवश्य झुकना पड़ेगा।

कृष्ण की वंसी

सदाकी भांति इस जन्माष्टमी पर भी लोगोंने 'कृष्णकी वंसी' को याद किया। कवियोंने उनको उनकी यह प्रतिज्ञा स्मरण दिलाई कि 'अधर्मकी वृद्धि होनेपर मैं पुनः जन्म लूंगा'। परन्तु कुछ कालसे मुझे तो सदा ही कृष्णकी वंसी याद आया करती है और वहुधा मेरा दुःखित मन अकुलाकर पूछा करता है। "इससे अधिक धर्मकी ग्लानि और क्या होगी, अधर्मका अभ्युत्थान और कितना होगा जो तुम अभी तक भी प्रगट नहीं होते हो।"

परन्तु मेरा रोना यह नहीं है कि इस समय 'कृष्णकी वंसी' ही विद्यमान नहीं है। वंसी तो अव भी है, पर उसके वजाने वाले कृष्ण नही है। पर जब कृष्ण ही नहीं तो इसे 'कृष्णकी वंसी' कैसे कहें। यह वंसी तो भगवद्गीतामें अव भी रखी हुई है। वंसीके विद्यमान होते हुवे भी वजाने वालेका न होना ही हमें विशेष दुःख पहुंचा रहा है।

फिर फिर याद आता है कि भारतका उद्धार तो अव केवल वजती हुई 'कृष्णकी वंसी' ही कर सकती है। इसमें कुछ भी संदेह नही कि कृष्णकी वंसी वजनेपर जव भारतवासी उसके

अनुसार वेसुध होकर नाचेंगे तो वे अवश्य अपना उद्धार कर लेंगे। इसलिये हे वंसीवाले कृष्ण! जन्मो। यही इस दरिद्र भारतके सब पृथिवी और आकाशकी मौन इच्छा है, भूखे मरते हुए और पराधीनतासे ग्रस्त भारतवासियोंकी आहें यही कह रही हैं तथा उठना चाहते हुए पर उठनेमें अपनेको असमर्थ पाते हुवे सब अशक्त भारतवासिओंकी यही पुकार मच रही है। "कृष्ण भगवन् जन्मो। मोहन अपनी मुरलीसे मोहित करदो। तभी हमारे प्राण बच सकते हैं।"

❀ ❀

भगद्गीतामें रखी हुई यह वंसी—यह मुरली 'कर्मयोग' के रूपमें है। यही वास्तवमें गीतावाले कृष्णकी वंसी है। आओ मैं तुम्हें वतलाऊं कि यह कर्मयोग रूपी कृष्णकी वंसी कैसी है।

'कर्मयोग' एक योग है जिसे कर्म द्वारा किया जाता है। इसकी महिमा तो इतनी वड़ी है कि तिलक महाराज जैसे पण्डित अपने वड़े भारी पोथेमें इसका व्याख्यान करते करते हार मानते हैं। परन्तु वनावटमें यह वहुत सीधी सादी है, जैसी कि हमारी प्राचीन सभ्यताको प्रत्येक वस्तु होती है। आज कलके 'हारमोनियम' और 'प्यानो' आदिके समान इसकी वनावट कोई जटिल नहीं है। यह और वात है, कि यह मोहन द्वारा निकले अपने स्वरसे लोगोंको मोहित करनेमें इन आधुनिक यंत्रोंकी अपेक्षा हज़ार गुना अधिक समर्थ हो पर यह वंसी है वड़ी सीधी सादी वस्तु। इसे समझना कुछ

भी कठिन नहीं है। मेरेजैसा पामर प्राणी भी बतला देगा कि यह कर्मयोगकी बंसी क्या है।

❀ ❀

यह कर्मके काष्ठसे बनी है। कर्म देखना हो तो पाश्चात्य देशोंमें देखलो। वहां पूरा कर्मका राज्य है। लोग दिन रात कर्ममें लगे है। ज़रा देरको भी उन्हें चैन नहीं है। उन्हें यह विचारनेकी भी फुरसत नहीं, कि यह कर्म मैं क्यों कर रहा हूँ। योरोप, अमेरिकाके लोग इतने कर्मरत है कि बस यही जानते है कि अगले क्षण हमें यह करना है। अन्दरकी अदम्य इच्छायें उन्हें आगे आगे कर्ममें ढकेलती जाती हैं और वे नये नये कर्म प्रवाहमें बहते जाते हैं। वहांका वायुमण्डल ही रजोमय है। रजोगुण प्रति क्षण उन्हें कर्ममें प्रवृत्त कराता रहता है। यदि वे क्षणभर कर्म न करें तो व्याकुल हो जाते हैं। उनके अन्दर रहने वाला रजोगुणका भूत क्षणभरमें बड़े बड़े भारी काम पूरा करके फिर सामने आ खड़ा होता है कि और कर्म बतलाओ। वहांके लिये मैं एक कहावतके शब्दों में कह सकता हूँ, कि वहां बुनी बुनाई खाट उधेड़ दी जाती है कि बुनने वालेको कर्म मिले। उनपर कर्मका भूत सवार है। इसका उतरना दुष्कर है, कर्म करते करते मर जानेपर ही यह भूत उतरता दीखता है। यह उतरे भी क्यों? जब कि इस भूतको प्रवृत्त करानेवाली अन्दरकी कामनाये, इच्छायें अतर्पणीय हैं। न ये कामनाये कभी तृप्त होंगी और न यह भूत

कभी उतरेगा। परन्तु यह कहनेकी आवश्यकता नहीं है कि कर्मके इस अतियोगसे उनका जो नाश हो रहा है उसके होते हुवे भी कर्म ही से उन्होंने जो बड़े २ लाभ पाये हैं उन्हें सब दुनिया जानती है। वे कर्मके बलसे इस समय दुनियाके राजा हैं, प्रभु हैं, चाहें जो कर सकते हैं। उन्होने समुद्रको भी वश कर रखा है। अग्नि, वायु आदि देवोंको अपना नौकर बना रखा है। यह सब कर्मकी ही विभूति है।

❀ ❀

परन्तु 'कर्म' का 'योग' क्या होता है इसे बतलानेसे पहिले अपने भारतवर्षकी कर्मके विषयमें जो पश्चिमसे बिलकुल विपरीत अवस्था है, जरा उसपर भी एक दृष्टि डाललें। यहां क्या है? हमारे देशमें योरोपसे विपरीत तमोगुणका राज्य है। लोग आलस्यमें पड़े हुवे, झूठे आरामकी सदा चाह करते हुए निरन्तर कर्मसे जी चुराया करते हैं। हम भारतवासी कुछ भी नहीं करना चाहते। केवल आदतके अनुसार हम कुछ थोड़ेसे कर्म किया करते हैं (बल्कि यों कहना चाहिये कि ये कर्म हमसे न जाने क्यों होते जाते हैं)। इनमें सबसे मुख्य है बातें करना, बात बनाना। दूसरा है तमाखू पीना या खाना। ऐसे ही दो चार कर्म हैं जो कि हम अपनी आदतके वश किया करते हैं। इनके अतिरिक्त यदि हम कुछ कर्म करते हैं तो वह मजबूरन अंग्रेजोंकी तोपों और जेलोंके भयसे या किसी लालचसे। ये हमारे विदेशी शासक ज़रूर (भय दिखलाते

छुवे या कहीं २ लालच देकर) हमें जिधर चाहते हैं हांका करते हैं और इस प्रकार थोड़ी देरके लिये हमारे तमोगुणका भंगकर देते है। परन्तु इन दो बातोंके (स्वभाववश, और अंग्रेजोंके भयवश, जो हमें करनी पड़ती हैं) अतिरिक्त हम कुछ नही करना चाहते। अपने भलेके लिये भी अपने आप कुछ कर्म करना हमारे लिये अति कठिन है। हम ऐसे जड़ हो गये हैं कि हमारे कई पूज्य नेता देशके लिये कुछ कर्त्तव्य करनेका उपदेश देते चिल्लाते २ मर गये, कई अनेता ही साबित होगये; पर हम किसी तरह करवट नही बदलते—हिलते तक दिखाई नही देते। हमारा रजोगुण यदि कभी बहुत ज़ोर करता ही है तो हम नीदमें ही अपने भाइयोंको मारनेका कर्म अधिकसे अधिक कर डालते हैं। और कुछ नही। हां जैसा कि ऊपर कह चुका हूं कि हमें बातें बनानेकी आदत है, तदनुसार (उदाहरणार्थ) यदि गांधी हमें चर्खा चलानेका सहजसा काम भी करनेको कहता है तो हम यह बात कह देतें हैं 'यह तो औरतोंका काम है' पर असलमें हमें यह औरतोंका काम भी इतना भारी प्रतीत होता है कि सचमुच इसे करनेकी अपेक्षा तो हमें मरनेमें ही आराम मालूम पड़ता है। फिर हममें से कोई कह देते हैं, कि "चर्खेसे क्या होना है हम तलवारसे स्वराज्य प्रात करेंगे।" परन्तु यदि कभी तलवारका वास्तवमें समय होगा तो ये लोग या तो कहेंगे कि तलवारकी धार टेढ़ी है या कुछ और इसमें त्रुटि निकाल देंगे, नहीं तो बहुत सम्भव है तबतो अपने

धर्मशास्त्रका हवाला देकर कह देंगे 'अहिंसा परमो धर्मः'। ऐसी हमारी हालत है। चर्खा तो दूर रहा खद्दर पहिननेके विषयमें कहें जो इससे भी आसान है तो हम इससे भी बढ़िया बात बनाकर टाल देते हैं। मतलब यह कि हमसे छोटेसा छोटा काम भी अपने आपसे कराना लगभग असंभव है। अंग्रेज लोग अपने कोडोंसे हमसे कर्म करवाले यह और बात है, पर अपनी इच्छासे अपनी जड़ताका कभी भंग करना नहीं चाहते। हमारी नस नसमें आलस्य भरा हुवा है।

❀ ❀

अपने देशकी इस दशाको देखकर कई बार क्रोध आता है और कई बार रोना आता है। रोना आने पर प्रायः श्रीकृष्ण याद आते हैं और उनका 'कर्मयोग' याद आता है। योरोपकी इस उपर्युक्त कर्मरतिको भी देखकर कृष्णका कर्मयोग ही याद आता है। क्योंकि कर्मयोगका मतलब है ठीक तरह कर्म करना। एक तरफ पश्चिमकी घोर कर्मण्यता है और दूसरी तरफ भारतकी घोर अकर्मण्यता; इन दोनोंके मध्यमें कर्म-योगका परम कल्याणकारी मार्ग चलता है। यह कर्मयोग क्या है? कर्मका योग करना, कर्मको योगकी तरह साधना। अपने लिये नहीं किन्तु कर्त्तव्य जानकर कर्म करना। कर्म भी करना है पर इच्छाओंसे (कामनासे) प्रेरित होकर नहीं। इसे ही निष्काम कर्म कहते हैं। गीताके शब्दोंमें कहें तो 'योगः कर्मसु कौशलम्' अर्थात् कुशलतासे कर्म करना ही कर्मयोग

है। यह कुशलता, निःस्वार्थता, निष्कामतामें ही है। रवीन्द्र ठाकुरने बड़ा अच्छा कहा है, कि कर्मको निष्काम बनाकर हमारे ऋषियोंने मानों सर्पिणीके मुँहसे दांत निकाल दिये हैं। इस कर्म सर्पणीसे खेलना भी पर काटे न जाना इस कौशलका नाम ही कर्मयोग है। यह कामना ही हमें डस लेती है। यह पहिले हमें आसक्त करती है, फँसाती है और फिर हमें काटती (दुःखी करती) है और नाश कर देती है अतः अगले जो बड़े २ श्रेष्ठ कर्म हैं उन्हें करनेसे भी हमें वञ्चित रखती है। इस आसक्ति व कामके हटते ही हम निर्द्वन्द्व और सम हो जाते हैं, निर्भय होजाते हैं अतः हमसे बड़े भारीसे भारी काम बड़ी आसानीसे हो जाते हैं। इसलिये भारतवासियोंकी जडता, अकर्मण्यताको हटानेका सर्वश्रेष्ठ उपाय यही है कि उन्हें कोई कर्मयोग सिखादे, यह सिखादे, कि 'कर्म करो, बिना स्वार्थके बिना फल प्राप्तिकी इच्छाके कर्म करो,' इसके सिवाय और कोई उपाय नहीं। जो सुधारक यह समझते हैं कि भारतकी अकर्मण्यता हटानेके लिये भारतवासियोंको योरोपका अनुकरण करना चाहिये—अपनी आवश्यकतायें, कामनायें बढ़ानी चाहिये और फिर उनकी पूर्तिके लिये बड़े बड़े भारी कल कारखाने खड़े करके कर्म करना चाहिये, वे सुधारक न केवल घोर कर्मण्यताकी हानियोंसे अभी अपरिचित हैं पर वे यह भी नहीं देख पाते हैं कि भारतवासियोको योरोपकी तरह घोर कर्मण्य बनाना यदि अभीष्ट हो तोभी कर्म शुरु करानेके लिये तो उन्हें कर्मयोग

ही कराना होगा, क्योंकि वे अभी कर्म तो करना ही नहीं चाहते। यह ठीक है कि उन्हें योरोपके <u>कर्मरत</u> कार्लाइल और कार्लमार्क्स दिखायी देते हैं और हमारे <u>कर्मयोगी</u> कृष्ण नहीं दिखायी देते, इसलिये उन्हें योरोपकी घोर कर्मण्यता प्रिय लगती है। पर उन्हें यह तो देखना चाहिये कि जड़ भारतवासियोंका उद्धार प्रारम्भ ही कैसे हो सकता है। बिना कर्मयोगके इन अनिच्छुकोंसे कर्म कैसे कराया जाय। इसलिये हर हालतमें भारतवासियोंका उद्धार कर्मयोगके बिना नहीं हो सकता। जब तक कि उन्हें यह न सिखाया जाय कि 'तुम्हारी इच्छा है या नहीं यह मत देखो, केवल कर्त्तव्य है इसीलिये कर्म करो' तब तक वे कोई भी कर्म नहीं प्रारम्भ कर सकते। परन्तु यदि इसके बाद भी हम भारतवासी निष्काम कर्म कर सकें तब तो बहुत अच्छा है, हमारा कल्याण ही कल्याण है। यही एकमात्र कर्मका सर्वश्रेष्ठ मार्ग है।

❀ ❀

इसलिये जब भी भारतके पुनरुद्धारके लिये चिन्ता होती है तब यह कर्मयोग ही एकमात्र उपाय सामने दिखाई देता है। पर साथ ही प्रश्न उठते हैं कि हमसे इस कर्मयोगको करवावे कौन? इस वंशीको बजावे कौन? वे कृष्ण कब जन्मेंगे जो कि कर्मयोगकी इस बंसीमें फूँक लगाकर इसकी तानपर नाच करनेवाले सैकड़ो अन्य कर्मयोगियोंको भी कर्मक्षेत्रमें खड़ा कर देंगे? ऐसे प्रश्न शायद सैकड़ों हृदयोंसे उठकर इस

भारतीय आकाशमें लुप्त हो जाते हैं, मानो उत्तर लानेके लिये आनेवाले कृष्णको ढूढ़ने चले जाते हैं।

वास्तवमें यह वंसी बजानेवालेका प्रश्न ही मुख्य है। इस बंसीको तो जो कोई भी गीता पढ़नेका यत्न करे देख सकता है। मैं समझता हूँ मैंने ही यह वंशी पाठकोंको बता दी है और यह इतनी सादीसी वस्तु है, कि मैंने इसकी रचना भी पाठकोंको समझा दी है। पर क्या वंशी इतनेहीसे समझमें आसकती है? यह तो तब समझमें आवेगी जब कि कोई इसे भारतवर्षमें बजाकर दिखला दे। बस इसे बजा सकनेवाले बिरले आदमीका नाम ही कृष्ण है, जो उपर्युक्त प्रश्नोंका उत्तर है। वह चाहे किसी नामसे प्रकट हो, पर जो भारतवासियोंसे कर्मयोग करवादे वही हमारा आनेवाला कृष्ण है। कृष्णका अर्थ है अपने कर्मयोगसे सैकड़ों कर्मयोगियोंको बना सकनेवाला महाकर्मयोगी। इसीकी कर्मयोगकी वंसी हमे बचा सकती है।

❀ ❀

पर शायद हमने यह समझा नहीं है कि इस कर्मयोगके बिना हमारा किसी तरह भी उद्धार नहीं हो सकता। ज़रा अलंकारको छोड़कर भी यह मूलकी बात हमें अच्छी तरह समझ लेनी चाहिये। हमारी हालत क्या है? हम दरिद्रतामें इतने फँसे हुये हैं और हम इतने निर्बल हो गये हैं, कि रुपयों-का और आरामका ज़रासा भी प्रलोभन हमारे लिये बहुत अधिक पर्याप्त है। और ये प्रलोभन हमारे विदेशी शासक सदा

हमारे सन्मुख प्रस्तुत रखते हैं, जिसका फल यह होता है कि इनके सामने उद्धारके सब उपाय निष्फल रहते हैं; क्योंकि इन उद्धारके उपायोंमें तो कोई प्रलोभन नहीं, बल्कि कुछ न कुछ आराम या पैसेका त्याग ही करना आवश्यक होता है। अतः प्रलोभनकी जीत होती है और हम इस दलदलमें और फँस जाते हैं, इस तरह कोई भी कार्य्यक्रम सफल नहीं होता। सफलता का तो एकमात्र उपाय यही है, कि किसी तरह अपने वैयक्तिक हानि लाभको बिलकुल बिना देखे देशके लिये कर्तव्य कर्म करने जाँय। यही है कर्मयोग। चर्खेके कार्य-क्रममें हमें कोई प्राण देनेको नही कहा गया है। खद्दर पहिनना और चर्खा चलाना, क्या इससे भी आसान कोई कार्यक्रम स्वाधीनता प्राप्त करनेके लिये बताया जा सकता है। पर हम इतना थोड़ा सा भी त्याग नही कर सके, इससे स्पष्ट है कि हम कितने फँसे हुए हैं। क्या स्वाधीनताके लिये इससे भी कम त्यागके उपायकी आप आशा करेंगे। इसलिये यह समझ लेना चाहिये कि कोई भी कार्यक्रम हो बिना कर्मयोगके हम उसे इस हालतमें कभी नहीं चला सकते। किसी तरह हमें केवल कर्त्तव्य समझ कर (और सब बातोंसे आँख मीचकर) कर्म करना होगा तभी हम इस दलदलसे निकल सकते हैं, नहीं तो इसमें और फँस-कर संसारसे अपना नाम ही मिटा देना होगा। ज़रा अपनी इस हालतको अच्छी तरह अनुभव कीजिये, तब आपके मुख-से यही निकल पड़ेगा 'कर्मयोग' 'कर्मयोग'। हम स्वयं कर्म-

योग नहीं कर सकते। कोई कृष्ण आकर हमसे निष्काम कर्म करवावे, हमसे कामनायें छुड़वावे और शुद्ध कर्म करवावे, तभी-केवल तभी-हम बच सकते हैं। नहीं तो हम दिनों दिन नीचे ही जा रहे हैं जहाँसे कि निकलना दिनों दिन असम्भव होता जाता है।

❀ ❀

तो क्या हमारी यह चरम पतनकी अवस्था, हमारे ये गुलामीके क्लेश, हममें यह अधर्मका अभ्युत्थान तथा उससे होनेवाले ये घोर दुःख अब भी हमारे लिये कृष्णका जन्म न करा सकेंगे? भारत माताकी यह वेदना प्रसववेदना ही क्यों न साबित हो? नहीं, अब अवश्य कृष्ण प्रकट होंगे। केवल हमें उनके स्वागतके लिये तैयार हो जाना चाहिये। भारतवासियो! अपने इन कष्टोंकी अग्निमें तप कर अब जल्दी अपनेको जितना हो सके कर्मयोगी बना लो। यही उनके स्वागतकी तैयारी है। और तप (द्वंद्वोंका सहन, इनमें सम रहना) यही कर्मयोगी बनने का साधन है। जब इस देशमें तपस्वी कर्मयोगियोंकी संख्या पर्याप्त हो जायगी, तभी उनके बीचमें महाकर्मयोगी कृष्ण भी प्रकट हो जाँयगे। सावधान रहना, यह विषम अवसर है। यदि हमने तैयारी न की तो सम्भव हो सकता है, कि यह वेदना प्रसववेदनाकी जगह माताकी मृत्यु-वेदना हो जाय। इसलिये अपनेको कर्मयोगी बनानेमें (तपस्यामें) कोई यत्न न उठा रखोगे तो ज़रूर कल्याण होगा।

❀ ❀

कई बार मनमें आता है कि वर्त्तमान 'मोहनदास कर्मचन्द्र' ही वे हमारे अभिलषित कृष्ण क्यों न निकले। यह तो भविष्य बतलायेगा, कि इस ज़मानेमें उद्धारके लिये उत्पन्न हुए कृष्ण कौन थे, पर यदि गांधी भी हमारा उद्धार करनेमें असमर्थ रहें तब या तो हमारा उद्धार ही नही होना है या इनसे भी बड़े कर्मयोगी कोई पैदा होंगे। नहीं, उद्धारक कृष्ण तो प्रकट होवेंगे ही, केवल हमें पहिले इन कष्टोंसे अपने आपको तपाकर तैयार रखना चाहिये। ऐसा तपाना चाहिये कि बहुत से छोटे कर्मयोगी बन जाँय, कुछ मध्यम दर्जेके कर्मयोगी बन जाँय और थोड़े से पूरे कर्मयोगी बन जाँय। बस फिर मोहन प्रकट होंगे और सबको मोहित करनेवाली मोहनकी मुरली भारतमें गूँजेगी और एक नृत्य शुरू होगा। जेल जानेसे पहले महात्मा गाँधीने एक पतंगनृत्य (Death Dance) का वर्णन किया था जो कि भारतमें हो रहा है। इसीकी प्रतिक्रियामें यह आनेवाले कृष्णकी मुरलीकी तान पर होनेवाला 'कर्मयोग महा-नृत्य' भारतमें चलेगा। जब वंसी बजेगी तो उसकी मस्तीमें आकर छोटे छोटे लाखों कर्मयोगी खद्दर पहननेके कर्तव्यके लिये खद्दरका मोटापन, इसकी महँगी, इसका जल्दी मैला हो जाना, यह सब भूल जायँगे, चर्खा चलानेके लिये आराम-की इच्छा और समयाभावको भूल जायँगे, मस्तीमें नाचनेवाले वकील अपनी वकालतकी आमदनी भूल जायँगे और मुक-दमेबाज़ अपनी डिग्रियाँ करानेकी चाह भूल जायँगे। बस

केवल अपना कर्तव्य दीखेगा, शेष उन्हें कुछ भी न दीखेगा। यही नहीं, बल्कि बड़े बड़े नचैय्ये न केवल जेलोंके कष्टोंमें रसका आस्वादन करेंगे अपितु हँसते हँसते फाँसी भी चढ़ेंगे और गोलियोंके आगे छाती खोलकर खड़े होंगे। आहा! यह मोहन की मुरली पर चलनेवाला क्या ही अलौकिक देवोंका महानृत्य होगा। उस दिन भारतके जन्म जन्मान्तरोंके पाप क्षण भरमें धुल जायँगे।

एक ऐसा छोटा सा नृत्य गांधीने भी गत वर्षोंमें करवाया था, जिसमें कि त्यागशूरोंने लाखोंकी आमदनियाँ भुला दी थीं और वीरोंने जेल भर दिये थे। पर ईश्वर करे कि अबकी बार का महानृत्य एक पूर्ण नृत्य हो। 'वंसीवाले कृष्ण'की वंसी ऐसी बजे कि सारा भारत हिल जाय और उसकी पराधीनता की सब बेड़ियाँ कटकट कर गिर जांय।

हे कृष्णके प्यारों! तैयार हो जाओ।

कुलिओं की माता

क्या तुम जानते हो कि जिस तरह अंग्रेज लोग 'दुकानदारोंकी कौम' (Nationl of Shoh-keepers) कहलाते हैं और जिस तरह जर्मन लोग 'सिपाहिओंकी कौम' (Nation of Soldiers) कहलाने लगे थे वैसे हम भारतवासी क्या कहाते हैं?' हमारा नाम है 'कुलिओंकी कौम' (Nation of Coolies)। हम तीस करोड़ बोझा उठाने वाले कुली हैं। हमने ३०००००००० होकर क्या किया? क्या हम इतनी बड़ी संख्या में भार ढोनेके लिये ही पैदा हुवे हैं? ओह! कुलिओंकी माता, कुलिओंकी दुखिया दीन माता, जो कि तीस करोड़ बालक रखती हुई भी उनके साथ दिनरात 'भार ही वहन करती' है। अच्छा होता कि हम संख्यामें इससे आधे, चौथाई बल्कि दसवां हिस्सा होते—तीस करोड़की जगह केवल तीन करोड़ ही होते—किन्तु कुली न होते; 'मनुष्य' होते, मांके (पौरुष-युक्त) 'पुरुष' सन्तान होते, वीर (पुत्र) होते। तब हमारी माता हमारे भरोसे रात भर निश्चिन्त हो सो तो सकती। सच है:—

सहैव दशभिः पुत्रैर्भारं वहति गर्दभी।
एकेनैव सुपुत्रेण सिंही स्वपिति निर्भया॥

❀ ❀

वास्तवमें हमने अपनी माताको 'सिंही'के स्थानपर 'गर्दभी' ही साबित किया है। सचमुच संख्यावृद्धि वृथा है। जहां 'गुण' (quality) होता है वहां 'संख्या' (quantity) की आवश्यकता नहीं होती। शेरका बच्चा एकही पर्याप्त है। भारत माताके इतने पुत्रोंकी जगह तिलक गांधी जैसे थोड़ेसे ही 'वीर' पुत्र रहते तो उसके सब दुःख मिट जाते। इसलिये आओ अब अपना सब ध्यान, सब सामर्थ्य, सब वीर्य 'संख्या' बढ़ानेके स्थान पर 'गुण' बढ़ानेमें ही खर्च करें। ठीक कहा जाता है 'गुलामोंकी संख्या मत बढ़ाओ'। स्वामी रामतीर्थ ने तो अपने प्रसिद्ध 'ब्रह्मचर्य' व्याख्यानमें कहा था कि 'क्या भारतवर्षको कालकोठरी ही बनाकर छोड़ोगे'। स्वामी सत्यदेवने 'राष्ट्रीय संध्या' में एक प्रार्थना यह भी लिखी थी 'मैं देशके लिये ब्रह्मचारी रहूंगा'। यह प्रार्थना प्रतिदिन करो और ब्रह्मचर्य द्वारा माताके 'शेर' बालक बनो।

❀ ❀

हम 'भार वाही' कुली क्यों हो गये हैं? क्योंकि हम अपना बोझ अपने आप नहीं उठा सकते। जो मनुष्य अपना बोझ अपने आप (स्वेच्छासे) उठाता है वह तो 'स्वाधीन पुरुष' है। जो दूसरोंका भी बोझ अपने आप स्वेच्छासे उठाता है

वह 'परोपकारी' है ॥ किन्तु जो दूसरोंका बोझ दूसरोंकी इच्छासे उठाता है वह 'कुली' है। और मनुष्य दूसरेकी इच्छाके अधीन तब होता है जब कि उसमें इच्छाको स्वाधीन रखनेकी शक्ति नहीं रहती। इसलिये मैं कहता हूं कि हमारे कुली होजानेका कारण यह है कि हममें अपना बोझ अपने आप उठानेकी शक्ति नहीं रही।

अपने राज्यका अपना बोझ हम स्वयं नही उठा सकते इसीलिये हम कुली बनकर नानातरहसे दूसरोंका वोझ उठा रहे है। हम तीस करोड़ कुली बनकर मांचेस्टरकी मिलोंका बोझ उठा रहे हैं, (यदि हम 'कुली लोग' आज विदेशी वस्त्र पहिननेसे हड़ताल करदें तो कल ही इन मिलोंमें ताले पड़जांय)। ब्रिटिश हितके लिये हिन्दुस्तानमें रखी हुई बड़ी फौजके महाव्ययका भारी बोझ कर (Tax) देदेकर हम ही ग़रीब भारतवासी 'कुली' उठा रहे है। एवं और नाना प्रकारके कर देते हुवे, सरकारी नौकरियां करते हुवे तथा अन्य सैकड़ों तरहसे सहयोग करते हुवे—'विदेशी नौकर शाही' के इस सब बड़े भारी बोझको उठानेकी कुलीगिरी हम भारतवासी समूहरूपसे कर रहे हैं और अपना कुली जीवन बिता रहे हैं।

ऐ मेरे कुली भाइयो! मैं रोकर कहता हूं कि अब यह कुलीगिरी बस करो। यह अच्छा नही। पराई इच्छासे (पराधीनतासे) दूसरोंका बोझ उठाना छोड़, अपना बोझ

स्वयं उठानेवाले वनजाओ और किसी तरह अपनी माताको 'कुलिओंकी माता' की जगह वही 'वीरोंकी माता' बना लो।

सबसे पहिले अपने खद्दरका थोड़ासा किन्तु खुरदरा भार अपने कन्धों पर स्वेच्छासे उठाकर मांचेस्टरकी मलमलका मुलायम वोझ अपने शरीर पर ढोनेकी कुलीगिरी तुरंत त्याग दो (कुलीगिरीकी इस दासतासे मिलनेवाले दो पैसे भी इसी के साथ जाने दो)। अपना यह एक बोझ स्वयं उठाकर देखो। यदि इसे उठालोगे तो थोड़े दिनोंमें ही देखोगे कि अपने राज्यका अपना बड़ा भारी वोझभी स्वयं उठानेकी शक्ति तुममें है और तब तुम सब कष्ट सहन करना स्वीकृत करलोगे, पर दूसरोंके दासतापूर्वक दिये इस नौकरशाहीके बोझको आगे घड़ी भर भी उठानेकी कुलीगिरी न कर सकोगे।

❁ ❁

आओ हम फिर 'कुलिओं' की जगह सचमुच 'वीर' बन जांय। अपना वोझ स्वयं उठाले। इसमें क्या है?

गुरुगोविन्दसिहने कहा था 'चिड़िओंको मैं वाज़ वनाऊं'। और उन्होंने 'चिड़िओं' से 'वाज़' बना दिये थे। हम वेही भारतवासी आज भी फिर चिड़िओंसे वाज़ बन सकते हैं, गर्दभोंसे सिंह वन सकते हैं, कुलिओंसे वीर वन सकते हैं, गुलामोंसे राजपुत्र वन सकते हैं और हमारी माता 'कुलिओं की माता' की जगह 'वीर माता' बन सकती हैं, 'चेरी' की जगह रानी वन सकती है।

और बनना क्या है? यह राम और कृष्णकी माता, ऋषिओं मुनिओंकी माता, भीष्म और अर्जुनकी माता, सीता और सावित्रीकी माता, अभी गुज़रे प्रताप और शिवकी माता क्या यह कभी 'कुलियोंकी माता' कहानेके योग्य है? केवल 'स्मृति' होनेकी देर है। जब दासी रानी होसकती है तो रानी को ही फिर रानी बनानेमें क्या घबराहट है, क्या मुश्किल है? क्या विलंब है?

❀ ❀

हे भारतवासी! ज़रा देख हम कुली बने हुवे कुपुत्रोंने अपनी माताको बंधवा रक्खा है और अपनी कुलीगिरीकी कमाईमें मस्त हैं। यदि तेरा ध्यान इस तरफ नहीं जाता तो तेरा पूजापाठ किस कामका? माताके इस मोक्षके लिये तू प्रतिदिन कितना यत्न करता है? अपने चौबीस घंटोंमें से कितना समय माताकी पूजा, माताकी सेवामें खर्च करता है? क्या तू समझता है कि माताको (और फिर इस हालतमें!) भुलाकर—विमुख रहकर—तू ईश्वरको प्राप्त होजायगा? अरे भाई! झूठे धर्मके आडम्बर और पाखण्डको दूर हटाकर, भय और पक्षपातके गाढ़ मलोंसे हृदयको शुद्ध करके, पवित्र अन्तःकरणसे देख कि अपनी माताकी सेवा करना ही बच्चोंका सबसे पहिला धर्म है। यही ईश्वरप्राप्तिका मार्ग है, यही जगन्माताकी सेवाका सच्चा साधन है।

इति जगन्मात्रर्पणमस्तु।

कुछ निर्देश

[आशा है इस पुस्तक के निम्न स्थलों को स्पष्ट करने के लिये दिये गये ये कुछ निर्देश पाठकों के अध्ययन में सहायक होंगे। प्रत्येक निर्देश के प्रारंभ में जो तीन संख्यायें दी गयी हैं उनमें से पहिली **तरंग** की संख्या है, दूसरी संख्या उस तरंग की **भंग** की (जहां एक भंग समाप्त हो दूसरी भंग प्रारंभ होती है उसे सर्वत्र ❀ ❀ ऐसे दो फूलों से प्रकट किया गया है) गिनती बतलाती है तथा तीसरी संख्या उस भंग की **पंक्ति** को सूचित करती है।]

१—२—११ **'इक्कीस हज़ार छ सौ'** एक दिन रात में मनुष्य के इतने ही अर्थात् २१६०० श्वास चलते हैं। (इस हिसाब से प्रतिमिनट १५ श्वास एक स्वस्थ पुरुष के चलते हैं।)

३—३—८ **'यच्च काम... कलाम्'** 'संतोषादनुत्तमसुखलाभ' इस योगसूत्र (२ ४२) पर भाष्य करते हुवे व्यास जी ने केवल यह उपर्युक्त श्लोक लिख देना ही पर्य्याप्त समझा है। इस श्लोक का अर्थ है 'संसार में जो काम का सुख है और जो बड़ा भारी दिव्य (देवताओं का, अलौकिक) सुख है, ये सब सुख तृष्णाक्षय के सुख के सामने एक कला (सोलहवीं कला) के भी बराबर नहीं है।'

४—१—१ इस भंग में अपक्व, क्षणिक वैराग्य की दशा का वर्णन है।

५—४—३ **पिंडोरानामी कहानी की लड़की'** देखो हाथर्न 'बडरबुक' की कहानियाँ।

५—७—७ **बाहर से सुन्दर और मनोहारी** कहानी में इस सन्दूक का ऐसा ही वर्णन है।

५—१२—३ **शिकंजे में कस वाले..... तसवाले** ये सब दण्ड पुराने अत्याचरी राजा दिया करते थे ऐसे वर्णन मिलते हैं।

५—१६—६ **'उस बंगाली'** अर्थात् खुदीराम बोस।

५—१६—८ **'दयानन्द का मुख'** प० गुरुदत्त जी ने वर्णन किया है कि स्वा० दयानन्द का

चेहरा मरते समय ऐसा आल्हादित था कि जैसे किसी बिछुड़े हुवे परम-मित्र को मिल कर स्वभावतः मुख आनन्द से खिल जाता है।

५—१६—१० **'काले भैंसे पर . ...लिये'** पुराणों में यम देवता का ऐसा ही चित्र है।

५—१७—४ **'प्रकाशसुधा'** सस्कृत में 'सुधा' शब्द का अर्थ पोती जाने वाली सफेदी, कलई, ऐसा भी होता है। यहाँ यही अर्थ है।

६—२-४ **'अपमानामृत के पिपासु'**। देखो मनु २—१६२ अमृतस्येव चौकाँक्षेदपमानस्य सर्वदा।

६-४-१५ **'कामिनो और कांचन'** यह रामकृष्ण परमहस के प्रसिद्ध शब्द हैं। तीन एषणाओं में से पुत्रैषणा और वित्तैषणा ही क्रमश॰ कामिनी और कांचन है। तीसरी लोकैषणा यही प्रतिष्ठा और यश की इच्छा है। इन तीनों एषणाओं को सन्यासी त्यागता है।

६-६-१५ **'अचल प्रतिष्ठ'** देखो गीता २-७०

६-८-१० **'मलिनजल'** जब कि ईश्वर प्राप्त प्रतिष्ठा दिव्य वृष्टि है तो मनुष्य दत्त प्रतिष्ठा मलिन जल है।

६-९-११, १२ **'वाढं, वाढं'** सस्कृत के इन शब्दों का अर्थ है 'बहुत अच्छा, बहुत अच्छा'।

६-१०-१६ **'जलसेक'** = पानी से सींचना।

७-१-8 **'महाव्रत'** देखो योगदर्शन २-३१।

७-१-१५ **'बड़े प्रलोभन का समय है'** यह उस प्रलोभन का वर्णन है जो कि प्राय॰ सब महा-त्माओं को सिद्धि से पूर्व प्राप्त हुआ है।

७-२-१४ **'कोठी'** अंग्रेज व्यापारियों ने प्रारंभ में एक कोठी ही बनायी थी।

७-४-८ **'महायुद्ध'** जैसे महाभारत का युद्ध।

७-५-५ **'उसके महाराज की**=नैपोलियन की।

८—२-१०, ११, १२ **सत्व, रज, तम**। देखो गीता १४ अध्याय के ५,६,७,८,९ श्लोक।

८—२—२३ **'उठो, देखो,**

हँसो' उन्नत होओ, साक्षात् करो, आनन्दित रहो। सत्, चित्, आनन्द को प्राप्त होओ।

६-२-१६ 'धारणा ध्यान समाधि'

६-२-१७ 'विभूतियां' देखो योगदर्शन तीसरा पाद।

६-३-६ 'वैरागी'

६-३-७ 'अभ्यास' देखो योगदर्शन १-१२,१३। देखो गीता ६-३५।

१०-१-१६ 'तुम्हारे ही लिये' प्रकृति पुरुष के लिये ही है। देखो सांख्यकारिका ५६ से ६० कारिकायें।

१०-२-१२ 'हृदय में स्वयं भगवान्' 'हृदि ह्येष आत्मा' प्र उप. ३-६। देखो गीता १८-६१

१०-३-२ 'अमृत पुत्र' 'शृण्वन्तु सर्वे अमृतस्य पुत्रा' वद।

१०-३-७ 'आनन्द से उत्पन्न होता है—लीन होता है' देखो तैत्ति उप. की भृगुवल्ली ६-१

११-०-० इस लेख में अग्नि व आग 'दुःख और कामना' हैं जो कि दोनों अन्त में एक ही वस्तु हैं। कामना में 'इच्छा, विषयेच्छा, आवश्यकतायें, इच्छा के काम क्रोध आदि आवेग' ये सब आ जाते हैं।

११-२-१२ 'पहिला सत्य' "संसार में दुःख है"

११-२-१३-१४ 'योगशास्त्र के साधनपाद में' देखो इस पाद का १५वा सूत्र।

११-२-१७ 'ई जग जरते ......आगि'। देखो कबीर बीजक की साखियां। इस दोहे का जो उत्तरार्ध है उसकी व्याख्या अगले (तीसरे) भंग में है।

११-४-२६ 'कृष्णवर्मायें' अर्थात् अग्नियें। अग्नि का नाम कृष्णवर्मा इसलिये है क्योंकि यह 'काला अवशेष छोड़ जाता है'। इससे स्मरण आने वाला मनु का आदेश यह है।

न जातु कामः कामानामुपभोगेन शाम्यति।

हविषा कृष्णवर्त्मेव भूय एवाभिवर्धते॥ मनु २-९४

११-५-१५-१६ 'वैश्वावराग्नि' देखो गीता १५-१४।

११-६-२ 'सिद्धान्त ही

यह है' इसके परिचायक दो प्रसिद्ध वाक्य यह हैं।

(I) अपना Standard of life ऊंचा करना चाहिये।

(II) Necessity is the Mother of inveution.

११–६–२ **'कपिलमुनि के शासन में जाओ'** सांख्य शास्त्र पढो। शासन, अनुशासन करने से ही शास्त्र का नाम 'शास्त्र' है।

११–६–३ **'तीन प्रकार के ताप'** = आधिदैविक आधिभौतिक और आध्यात्मिक ॥ सांख्य **प्रथम** कारिका।

११–९–४, ५ **एकान्त और अत्यन्त**। देखो सांख्य की प्रथम कारिका।

११–९–१२, १३ **'अवश्य'** = एकान्त। 'फिर कभी ··रहता' = अत्यन्त।

११–९–२० 'औषधि' शब्द का यही अर्थ है।

११–११–५ **जो जैसी ·· देते हैं'** = आन्दोलनपेशा लोग।

११–१३–१ देखो १४–४–२९ में उद्धृत मनु श्लोक और गीता २–७० का चौथा पाद।

११–१६–९ **'अनिकेतः'** देखो गीता १२–१९।

११–१६–१५ **'पैदा की हुई'** जैसे पुत्र प्यारा होता है।

११–१६–१८ **'कोई दूसरा न आ सके'** यह स्वार्थ, अहंकार, 'अपना आपा' का स्वरूप है।

१–१६–४० **'सुख की वर्षा करो···ओर'** यह एक गीत की टेक है जो कि गुरुकुल कांगडी में प्रति दिन वारी २ से पढाई क प्रारंभ में मिल कर गाये जाने वाले ८ गीतों में एक है।

१२–२–४ **सूत्रों**। सूत्रात्मा वायु की तरफ इशारा है।

१२–४–१२ **प्रेयमार्ग**। कठ उप. २–१, २।

१२–६–२४ **'हिरण्मयपात्र'** ईश उप. का १५ वा मंत्र।

१३–३–६ **(खोल) कोश**। अन्नमय आदि प्रसिद्ध पाच कोश।

१३–४–१२ **'पांच प्रकार के सूत्र'**। पीला, सफेद, लाल, हरा और श्याम रंग के पृथ्वी जल तेज, वायु और आकाश के सूत्र

१३–४–१३ **'लाखों प्रकार'** चौरासी लाख।

१३—६—१ यह वैज्ञानिक सिद्धान्त है कि यदि विद्युत्पिण्ड पर एक ओर पृष्ठ लगाया जाय तो विद्युत् उस पृष्ठ पर आ जायगी।

१३—६—२ आत्मा = मिथ्यात्मा या गौणात्मा।

१३—७—६ 'असली आत्मा' मुख्यात्मा।

१३—७—६ 'गुफाओं'। उपनिषद् में इसके लिये 'गुहा' आता है

१५—१—११ 'पश्चिमी विद्वान्' = डा. हेग।

१६—६—१७ 'उपनेत्र' = ऐनक।

१५—६—२६ 'पूर्वेषामपिगुरु' योगसूत्र १—२६

१५—८—२२ देखो ऋग्वेद १०-११७—५ १६—१—२९, ३०। गीता २—६९।

१६—२—३ 'पूर्व रात्र में ·· लिये'। प्राकृतिक चिकित्सा में यह स्वास्थ्य सिद्धान्त है तथा आध्यात्मिक स्वास्थ्य के लिये भी नियम है कि रात्रि के पहिले आधे में जितनी नींद ली जा सके उतना अच्छा है।

१६—३०५ अवसिताधिकार देखो योग शास्त्र।

१६—३—७ 'गुणातीत' देखो गीता अध्याय १४ श्लोक २० से २५

१६—३—२९ 'बड़ा ह्रास' देखो कुसुमांजलि स्तवक २, कारिका ३

१६—३—२४, २५ आयु घटती है। यह मनु का वचन है।

१७—३—७, ८ यह 'न्यूटन' ने अपने विषय में कहा है।

१७—८—९ 'अनेकजन्म संसिद्ध ......' देखो गीता ६—४५

१८—१—२०, २२ 'जीवन' 'अमृत' संस्कृत में जीवन और अमृत ये दोनों जल (पानी) के नाम हैं।

१८—२—१९ 'और सब कुछ ···जाता है'। मुण्डकउप० १—३। छान्दोग्य ६—१—३।

१९—२—१९ गीता ३—१३।

१९—२—२८ ऋग्वेद १०-११७-७

१९—४—१२ गीता ३—१२

१९—८—० यह आठवां मंत्र।

१९—५—८ में लिखे 'और नहीं सकता है' इस वाक्य की व्याख्या

है। 'न होना चाहिये' इसकी व्याख्या अब तक हुई है।

१९-११-४ **'करोड़ो भाई'** इंग्लैंड के स्वतंत्र मजदूर दल ने ही लिखा है 'सर विलियम इंटर जैसे ऐंग्लोइंडियन की अधिकार युक्त गिनती के हिसाब से कोई चार करोड़ मनुष्य दिन में एक ही मरतबा खाकर जीवन बिताते हैं। सर चार्ल्स इलियट की एक और गिनती के हिसाब से भारत के किसान लोगों में से आधे लोग, जिन्हें मि० जि० के० गोखले ने सात करोड़ के लगभग माना था, हमेशा भूखे रहते हैं। वर्ष में कभी उन्हें एक बार भी पेट भर कर खाना नहीं मिलता है—इसमें पेट भर कर खाने की खुराक भारतीय कैदियों को जो खुराक दी जाती है उससे अधिक नहीं गिनी गयी है'।

१९-१२-११, १२ 'ये लार्ड सेलिस्बरी के शब्द हैं।

२१-१-११ **'भार ही वहन करती'** श्लोक के 'भारं वहति' शब्द स्मरण कराने के लिये लिखा है।

२१-१-१५ **'वीर' (पुत्र)** संस्कृत में वीर शब्द का अर्थ 'पुत्र' होता है।

२१-१-१७, १८ गधी अपने दसों पुत्रों के साथ भार ही ढोती है सिंही अपने एक ही सुपुत्र के कारण निर्भय होकर सोती है।

प्रथम श्रेणीके स्थाई ग्राहक

स्थाई ग्राहक होनेके नियम

नोट—मालासे निकली हुई पूर्व प्रकाशित पुस्तकें चाहे वे लें या न लें पर आगे प्रकाशित होनेवाली पुस्तकोंकी एक एक प्रति उन्हें अवश्य लेनी होगी।

(१) वार्षिक ग्राहक—चूंकि प्रत्येक पुस्तकें वी० पी० से भेजनेसे पोस्टेजके अलावा ।) प्रति पुस्तक वी० पी० खर्च ग्राहकोंको अधिक लग जाता है अतएव यह सोचा गया है कि वार्षिक ग्राहकोंसे प्रति वर्ष ४) पेशगी लिया जाय अर्थात् तीन रुपया १६०० पृष्ठोंका पुस्तकोंका मूल्य और १) डाक खर्च। वार्षिक ग्राहक जिस वर्षके ग्राहक बनेंगे उस वर्षकी सब प्रकाशिक पुस्तकें उन्हें लेनी होगी।

(२) जो सज्जन ॥) प्रवेश फीस देंगे उनका नाम भी स्थाई ग्राहकोंमें सदाके लिये लिख लिया जायगा और ज्यों पुस्तकें निकलती जावेंगी वैसे वैसे पुस्तकका लागत मूल्य और पोस्टेज खर्च जोडकर वी० पी० से भेज दी जावेंगी।

नोट—इस तरह प्रत्येक पुस्तक वी० पी० से भेजनेमें वर्ष भरमें कोई ढाई रुपया पोस्टेजका खर्च ग्राहकोंको लग जायगा।

हमारी सलाह है कि आप वार्षिक ग्राहक ही बनें।

क्योंकि इससे आप बार बार वी० पी० छुडानेके झंझटसे बच जावेंगे और पोस्टेजमें भी आपको बहुत ही किफायत रहेगी। और स्थाई ग्राहक फीसके आठ आने भी आपसे नहीं लिये जावेंगे।

द्वितीय श्रेणीके स्थाई ग्राहक

(१) जो सज्जन मालासे निकलनेवाली सब पुस्तकें न लेना चाहें, अपने मनकी पुस्तकें लेना चाहें वे ऊपर लिखे न० २ के प्रवेश फीस वाले ग्राहक हो सकते हैं। पर उन्हें वर्षभरमें कमसे कम २) मूल्यकी पुस्तकें जिस मालाके वे ग्राहक बनें उस मालाकी लेनी होगी।

नोट—आप जिस मालाके जिस श्रेणीके वार्षिक या प्रवेश फीस वाले ग्राहक बनना चाहें खूब स्पष्ट लिखें। दोनों मालाओंके बनना चाहें तो वैसा लिखें।

सस्ती साहित्य मालासे प्रकाशित पुस्तकें (प्रथम वर्ष)

(१) द० अफ्रिकाका सत्याग्रह (म० गांधी) पृष्ठ २७२ मूल्य ॥।) (२) शिवाजीकी योग्यता-पृष्ठ १३२ मूल्य ।=) (३) दिव्य जीवन पृष्ठ १३६ मूल्य ।=) (४) भारतके स्त्री-रत्न पृष्ठ ४०२ मूल्य १=) (५) व्यावहारिक सभ्यता पृष्ठ १०८ मूल्य ।)॥ (६) आत्मोपदेश पृष्ठ ११२ मूल्य ।-)

सस्ती प्रकीर्णक पुस्तक मालासे प्रकाशित पुस्तकें (प्रथम वर्ष)

(१) कर्मयोग पृष्ठ १५२ मूल्य ।=) (२) सीताजीकी अग्नि-परीक्षा-पृष्ठ १२४ मूल्य ।-) (३) कन्या शिक्षा-पृष्ठ ९६ मूल्य ।) (४) यथार्थ आदर्श जीवन-पृष्ठ २६४ मूल्य ॥-) (५) स्वाधीनताके सिद्धान्त (टेरेन्स मेकस्विनी) पृष्ठ २०८ मूल्य ॥) (६) तरंगित हृदय-पृष्ठ १७० मूल्य ।≡)

☞ स्थाई ग्राहकोंसे पिछले पृष्टपर दिये हुए "पुस्तकोंका मूल्य" इसके अनुसार ही मूल्य लिया जायगा।

पता—सस्ता साहित्य प्रकाश मंडल, अजमेर।